ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद् भद्रं तन्न आसुव ।

विश्व शान्ति पाठ

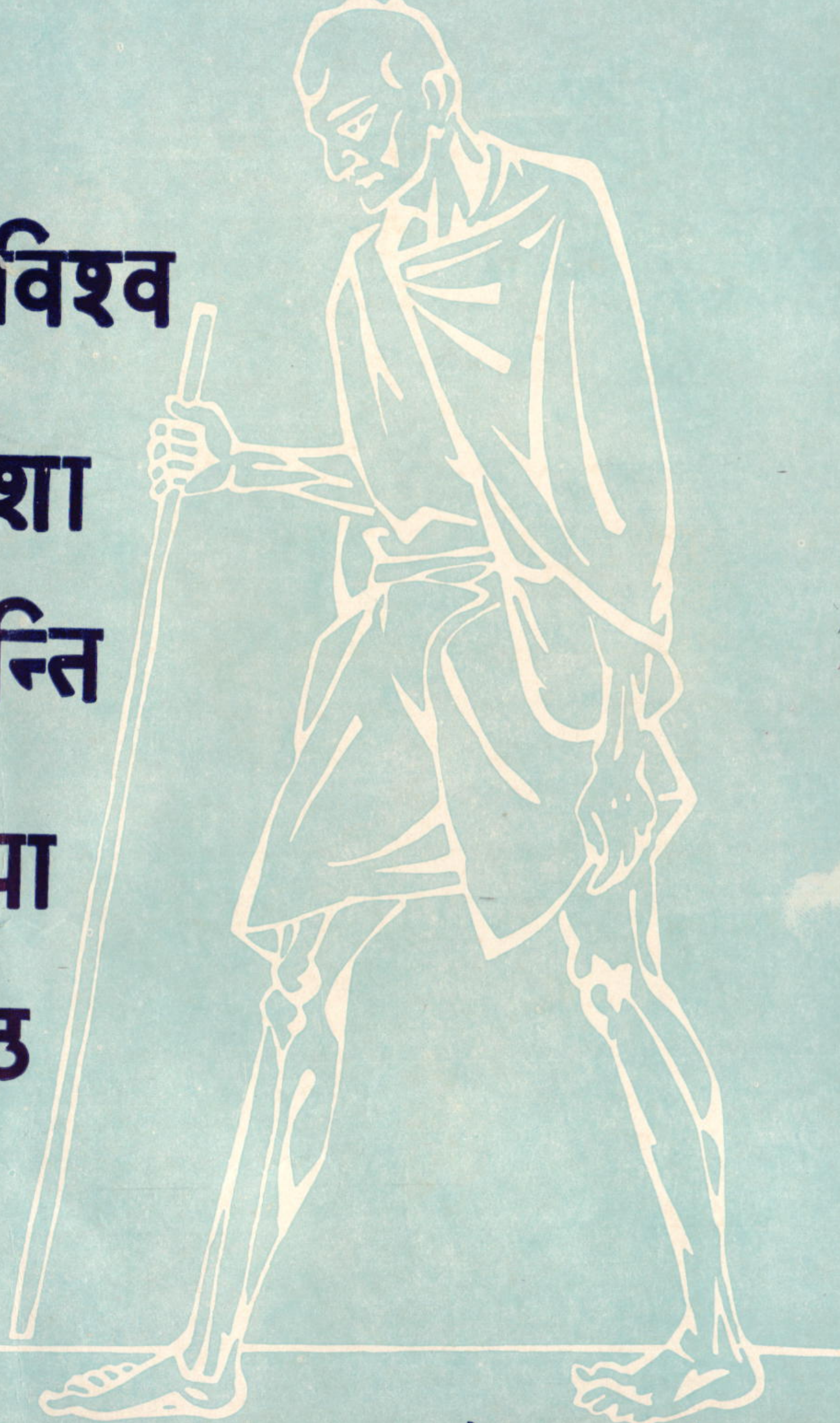

लेखक : कथाभट्ट जगदीशचन्द्र शर्मा

।। श्री ।।

विश्व-शान्ति-पाठ

लेखक

कथाभट्ट जगदीशचन्द्र शर्मा

साहित्याचार्य, साहित्य-रत्न,

प्राध्यापक-साहित्य

महाराज-संस्कृत-कॉलेज, जयपुर

प्रकाशक

राजस्थान-विद्वत्-परिषद्

चांपावतजी का मन्दिर,

जौहरी बाजार, जयपुर

सर्वाधिकार लेखकाधीन

मूल्य पांच रुपये मात्र

मुद्रक : जयपुर लॉ प्रिण्टर्स
जाट के कुए का रास्ता, जयपुर

'वन्दे-मातरम्'

भूमिका

मातृभूमि भारतमाता का नमन करके, मैं, 'शान्तिपाठ' प्रस्तुत कर रहा हूं। प्रस्तुत रचना संसार में उपद्रव, युद्ध, आपसी वैर-बन्धक, आदि को कम करने के लक्ष्य से लिखी गई है। मानव-मात्र का एकाङ्गी चित्रण व यथासाध्य उपलब्ध महापुरुषों के वचनों की अविकल भावना उपस्थित करके, युद्ध नहीं, शांति परमश्रेयस्करी है, इसे पुष्ट किया गया है।

'शान्त्यै पाठः' इस अर्थ में, शम-दम का विचार करने के लिए, जिन ग्रंथों, विद्वानों और महात्माओं के वचनों की आवश्यकता होती है, वे ही प्रमाण हैं। अध्ययन मन की वृत्तियों को जाग्रत करता हुआ मानव में धारणा (ज्ञानवती बुद्धि) का निर्माण करता है और वही धारणा सत्य से आबद्ध होने के कारण, असत्य के मिथ्याध्यवसाय से मानव को दूर करती है। भगवान वेद व्यास के वचनों में 'यद्भूत हित मत्यन्तं तद् सत्यम्—इति धारणा', जिस अत्यन्त भूत हित की ओर मानव को उन्मुख किया गया है वह त्रिकालाबाध्य अस्तित्व रखने वाला 'सत्य-ज्योतिर्मय-चैतन्यस्वरूप' है। इसका साक्षात्कार महात्मा योगी लोग ही करते हैं और यही उपासनीय है।

जिन महापुरुष महात्मा गांधी की प्रथम जन्म-शताब्दि इस वर्ष, विश्व के अनेकानेक देशों में मनाई जा रही है उसमें सारभूत बात यही है कि महात्मा ईसा और सुकरात की जिन त्याग-भावनाओं का हजारों वर्ष होने पर भी दिलों में समादर है और वह सत्य सदा वर्तमान रहता है। उसी प्रकार भारत में भगवान राम, कृष्ण, दानी हरिश्चन्द्र और दधीची आदि का नाम घर-घर में लिया जाता है और रावण, कंस आदि की मनमानी करने को बुरा बताया गया है। इस बीसवीं सदी में भारतवर्ष में यदि कोई सत्य पर पूर्ण आग्रह रखने वाला युगपुरुष हुआ तो वे महात्मा गांधी थे, जिनने अनेकानेक कष्ट सहन करके भी भारत में युद्ध आदि प्रसङ्गों को रोका और अपने प्रभाव से ही सात समुद्र पार से आने वालों को सत्याग्रह के बल पर वापस सात समुद्र पार जाने को बाध्य किया।

संसार की कोई सन्नीति किसी को गुलाम बनाकर पराधीन नहीं रख सकती। आपसी वैर भी समझदारों में समझाने से शान्त हो जाता है यह

आपकी नोआखाली आदि की पदयात्रा के उदाहरण हैं। महात्मा गांधी के सिद्धान्तों में 'ईशावास्योपनिषद्' का प्रथम सूक्त का पहिला मन्त्र प्रमुख था :—

"ईशावास्यमिदं सर्वम् यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मागृधः कस्यस्विद्धनम् ।।"

इस पृथ्वी पर निर्मित सृष्टियों में जो कुछ चलता-फिरता या वर्तमान दिखाई देता है यह सब उस अव्यक्त का निवासस्थान हैं, उसी का बनाया बसाया हुआ है, अतः वही इस चलती-फिरती दुनियां का व्यवस्थापक है। जो कुछ व्यक्तियों को स्वयं त्यागकर उसने दिया है, उस मिली हुई का उपभोग करो और दूसरे को दिए गए हिस्से की ओर मत ताको, ऐ मानव ! वह तेरे हिस्से की वस्तु नहीं है। जो दाता है वह ही उपास्य है और उसी के वैभव की उपासना, 'सर्वं खिल्वदं ब्रह्म' इस आत्मज्ञान द्वारा दी जाती है और महात्माजी ऐसा ही करते थे।

एक समय 'हिन्दुस्तान' दैनिक ने 'महात्मा गांधी से आपने क्या सीखा ?' यह प्रश्न किया था, और पाठकों से उत्तर मिले पत्रों को रविवासरीय-संस्करण में स्थान दिया था। उस समय 'उपासना तत्त्व की गहराई' महात्माजी के जीवन में देखी गई, इस तरह का मेरा एक पत्र जो 'जगदीश शर्मा, जयपुर' के नाम से प्रकाशित हुआ था। महात्माजी पूर्ण-ईश्वर के उपासक थे और उनकी उपासना का सार्वजनिक प्रकार 'प्रार्थना सभा' का नियमित होना था। यहां कुछ उन्हीं, उपासना-स्वरूप प्रार्थना सभा के प्रवचनों के अंश 'हरिजन-सेवक' से साभार उद्धृत कर दिए जा रहे हैं:—

'हरिजन-सेवक' भाग १०, अङ्क ३३' अहमदाबाद रविवार ता० २२ सितम्बर १९४६ **'सम्मिलित प्रार्थना'**। **स०** 'क्या आप सम्मिलित प्रार्थना में मानते हैं ? आजकल जैसी सम्मिलित प्रार्थना की जाती है, क्या वह सच्ची प्रार्थना है ? मैं समझता हूं कि वह नीचे गिराने वाली चीज है, और अिस-लिअे खतरनाक है। हजरत मसीहा ने कहा है—'जब तुम प्रार्थना करो तो पाखण्डियों की तरह न करो, बल्कि अपने कमरे में किवाड़ बन्द करके और छिपकर अपने पिता के आगे प्रार्थना करो।' भीड़ में ज्यादातर लोग बेध्यान रहते हैं और मन को स्थिर नहीं कर पाते। अुस हालत में प्रार्थना पाखण्ड बन जाती है। योगी अिसे खूब जानता है। तो क्या जनता को अन्तर्मुख होने यानी अन्दर नजर डालने की तालीम नहीं दी जानी चाहिये ? सच्ची प्रार्थना तो वही है।'

ज० 'मेरा मत है कि मैं जो सामूहिक या मजमूअी प्रार्थना कराता हूं, वह जन-समूह के लिए सच्ची प्रार्थना है। अुसका संचालक आस्तिक है,

पाखण्डी नहीं। अगर वह पाखण्डी होता, तो प्रार्थना शुरू से ही अपवित्र हो जाती। जो स्त्री पुरुष अुसमें शामिल होते हैं, वे किसी पुरानी रीति के प्रार्थना मन्दिर में नहीं जाते, जहां उन्हें कोई सांसारिक लाभ हो।

"अूपर के सवाल में हजरत मसीह का जो फिकरा दिया है। वह यहां लागू नहीं होता। हजरत मसीह अुन लोगों का जिक्र कर रहे थे, जो दिखावे के लिअे प्रार्थना करने का डोंग रच रहे थे। अुनके अुस वचन में सामूहिक प्रार्थना के विरुद्ध कुछ भी नहीं कहा गया है। मैं कअी दफा कह चुका हूं कि जाती प्रार्थन के बिन आम प्रार्थना का लाभ बराये नाम ही होता है। मेर विश्वास है कि व्यक्तिगत जाती प्रार्थना सामूहिक याने आम प्रार्थना का तैयारी है। अिसलिअे सामूहिक प्रार्थना तभी सफल मानी जानी चाहिये, जब वह हरअेक को अपने तौर पर प्रार्थना करना सिखाये। दूसरे शब्दों में, जब अिनसान दिल से प्रार्थना करना सीख जाता है, तो फिर वह अकेले में प्रार्थना करे, हमेशा सच्चे दिल से प्रार्थना करता है।

"मैं नहीं जानता कि अिन भाअी ने जिस योगी का जिक्र किया है, वह क्या करता है, और क्या नहीं करता। लेकिन अितना मैं जानता हूँ कि जब जनता परमात्मा के साथ अेकतार हो जाती है तो वह खुद बखुद अपने भीतर नजर डालने लगती है। यही सब प्रार्थनाओं का नतीजा होना चाहिये। नअी दिल्ली १४-९-४६।

('हरिजन' से) मोहनदास करमचन्द गांधी।"

२२ सितम्बर १९४६ 'हरिजन सेवक' 'दशरथनन्दन राम'

अेक आर्य समाजी भाअी लिखते हैं:-

"जिन अविनाशी राम को आप अीश्वर स्वरूप मानते हैं, वे दशरथ-नन्दन सीतापति राम कैसे हो सकते हैं?"

"सबके मानी मैं बता चुका हूँ। जो लोग दिल से हिस्सा ले सकें, जो अेक सुर में गा सकें, वे ही हिस्सा लें, बाकी शान्त रहें। लेकिन यह तो छोटी बात हुअी। बड़ी बात तो यह है कि दशरथनन्दन अविनाशी कैसे हो सकते हैं। यह सवाल खुद तुलसीदास जी ने उठाया था और अुन्होंने इसका जवाब भी दिया था। अैसे सवालों का जवाब बुद्धि से नहीं दिया जा सकता—बुद्धि को भी नहीं। यह दिल की बात है। दिल की बात दिल ही जाने। शुरू में मैंने राम को सीतापति के रूप में पाया लेकिन जैसे-जैसे मेरा ज्ञान अनुभव बढ़ता गया, वैसे-वैसे मेरा राम अविनाशी और सर्वव्यापी बना है, और है। अिसका मतलब यह कि वह सीतापति बना रहा, और साथ ही सीतापति के

माने भी बढ़ गये। संसार अुसे ही चलता है। जिसका राम दशरथ राजा का ही कुमार ही रहा, अुसका राम सर्वव्यापी नहीं हो सकता, लेकिन सर्वव्यापी राम का बाप दशरथ भी सर्वव्यापी बन जाता है। कहा जा सकता है कि यह सब मनमानी है—'जैसी जिसकी भावना, वैसा उसका होय'। दूसरा कोअी चारा मुझे नजर नहीं आता। अगर आखिरकार सब धर्म अेक हैं, तो हमें सबका अेकीकरण करना है। अलग तो पड़े ही हैं और अलग मानकर हम अेक दूसरे से लड़ते हैं। और जब थक जाते हैं, तो नास्तिक बन जाते हैं, और फिर सिवा 'हम' के न अीश्वर रहता है, न कुछ और? लेकिन जब समझ जाते हैं, तो हम कुछ नहीं रह जाते, अीश्वर ही सब कुछ बन जाता है—वह दशरथ-नन्दन, सीतापति, भरत-लक्ष्मण का भाअी है भी और नहीं भी।

नअी दिल्ली १६-६-४६ मोहनदास करमचन्द गांधी।'

अहिंसा

'हरिजन सेवक' रविवार ता० २६ जून १६४७

'सबके पहिले मैंने साफ कह दिया है कि पिछले तीस वर्षों में जिस अहिंसा का इस्तेमाल किया गया, वह कमजोरों की अहिंसा थी। मेरा यह जवाब ठीक या काफी है कि नहीं, यह तो दूसरों को बताना होगा। इसके बाद दूसरी एक बात भी स्वीकार करनी होगी कि आज के बदले हुए संयोगों में कमजोर की अहिंसा कुछ काम नहीं दे सकती। हिन्दुस्तान को बहादुरों की अहिंसा का कुछ तजरबा नहीं है। अगर मैं बारबार यह कहता रहूँ कि बहादुरों की अहिंसा दुनियां में सबसे बड़ी शक्ति है, तो उससे मेरा कोई मतलब हल नहीं होता। इस सत्य का लगातार बड़े प्रमाण में प्रत्यक्ष प्रयोग कर दिखाने की जरूरत है। मुझमें जितनी शक्ति है उसका पूरा-पूरा इस्तेमाल कर मैं यही कर दिखाने की कोशिश कर रहा हूं।

बहादुरों की अहिंसा— 'मेरा यह विश्वास है कि फिरकेवाराना लड़ाई को रोकने के लिये भी अहिंसा का हथियार उसी तरह कारगर साबित हो सकता है, जिस तरह वह ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ लड़ी गई हमारी आजादी की लड़ाई में कारगर साबित हुआ है। उस समय लोगों ने अहिंसा के जरिये लड़ने में मेरा साथ दिया था, क्योंकि वे जानते थे कि जबरदस्त ब्रिटिश हथियारों का मुकाबला और किसी तरह नहीं किया जा सकता। लेकिन वह कमजोरों की अहिंसा थी। फिरकेवाराना लड़ाई में उस अहिंसा से काम नहीं चल सकता। उसके लिये तो बहादुरों की सच्ची अहिंसा की जरूरत है।

'बहादुरों की अहिंसा की साधना की सबसे पहली शर्त यह है कि हम अपने दिल में राम की जीती-जागती हस्ती को महसूस करें। इस चेतना को पाने के लिये मन्दिर जाने की जरूरत नहीं, रोज ईश्वर का नाम जपना खास मानी रखता है। हम यह मानते हैं कि हिन्दुस्तान के लाखों-करोड़ों आदमी रोज किसी खास वक्त पर भगवान को राम, अल्लाह, खुदा, अहुरमज्द या जेहोवा के नाम से याद करते हैं। लेकिन अगर ईश्वर का नाम जपनेवाले लोग शराब पीते हैं, व्यभिचार करते हैं, बाजारों में सट्टा खेलते हैं, जुआ खेलते और काले बाजार वग़ैरा करते हैं तो उनका रामधुन गाना बेकार है।........ इसलिये यह कहने के बनिस्पत कि बहादुरों की अहिंसा सिखाने के लिये तैयार नहीं है। यह कहना बिलकुल ठीक होगा कि अभी मैंने बहादुरों की अहिंसा के लिये कोई प्रोग्राम नहीं तैयार किया है, यह कहना ज्यादा सच होगा (अगर यह हकीकत हो) कि हिन्दुस्तान बहादुरों की अहिंसा सीखने के लिये तैयार नहीं है।'

९ जून १९४६ 'हरिजन सेवक' 'धर्म और अधर्म का विवेक'

'मैं जिस अहिंसा का पुजारी हूं, वह निरी जीव-दया ही नहीं है। जैन धर्म में जीव दया पर खूब वजन दिया गया है। वह समझ में आता है, मगर उसका मतलब यह हर्गिज नहीं कि इन्सानों को छोड़कर हैवानों पर दया की जाय। मैं मानता हूँ कि जहां जानवरों पर दया करने की बात लिखी है, वहां मनुष्य पर दया करने की बात तो मान ही ली गई है।

'अहिंसा सबसे ऊंचा धर्म है। वह बहादुरों का धर्म है, कायरों का कभी नहीं। दूसरे मारें, हिंसा करें और हम उससे फायदा उठायें और माने कि हमने धर्म का पालन किया है, तो यह अपने आप को धोखा देना नहीं हुआ तो और क्या हुआ।

'देहधारी को कुछ न कुछ हिंसा तो करनी ही पड़ती है। असल धर्म एक होते हुए भी उसके बारे में हरएक की समझ अलग-अलग होती है। इसलिये सब अपनी शक्ति और समझ के मुताबिक उस पर चलते हैं। एक का धर्म दूसरे के लिये अधर्म हो सकता है। मांस खाना मेरे लिये अधर्म है, मगर पर जो मांस पर ही पला है, जिसने मांस खाने में कभी बुराई नहीं मानी, वह मुझे देखकर मांस छोड़ दे, तो उसके लिये वह अधर्म होगा।

'मुझे खेती करनी हो, जंगल में रहना हो तो खेती के लिये लाजिमी (अनिवार्य) हिंसा मुझको करनी ही पड़ेगी। बन्दरों, परिन्दों ऐसे जन्तुओं को

जो फसल खा जाते हैं, खुद मारना होगा, या कोई ऐसा आदमी रखना होगा जो उन्हें मारे। दोनों एक ही चीज हैं, जब अकाल सामने हो, तब अहिंसा के नाम पर फसल को उजड़ने देना मैं तो पाप ही समझता हूँ। पाप और पुण्य स्वतन्त्र चाजें नहीं हैं। एक ही चीज एक समय पाप और दूसरे समय पुण्य हो सकती है।

'आदमी को शास्त्ररूपी कुए में डूब नहीं जाना है, बल्कि गोताखोर बन कर शास्त्ररूपी समुद्र में से मोती निकालने हैं। इसलिये कदम-कदम पर आदमी को हिंसा और अहिंसा का विवेक (तमीज) करना होता है। इसमें न शर्म की गुंजाइश है, न डर की।'

मसूरी, २६-५-४६ ('हरिजन बन्धु' से) मोहनदास करमचन्द गांधी।'

'हरिजन-सेवक'–रविवार ता. १३ जुलाई १६४७

'पाकिस्तान में मुसलमानों का बहुमत होगा, लेकिन वह सारा मुल्क मुसलमानों का नहीं है। वहाँ रहने वाले मुसलमान, हिन्दू, खिस्ती आदि सब का वह मुल्क होगा।

'और जो असली देश है, जिसे हम 'हिन्दुस्तान' कहने के बजाय 'हिन्द' कहना ज्यादा पसन्द करते हैं, असमें हिन्दुओं की तादाद भले ही ज्यादा हो लेकिन वह भी सिर्फ हिन्दुओं का मुल्क नहीं है। यहाँ रहने वाले हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी सभी लोगों का देश है। यहाँ हम सब अपने को एक राष्ट्र मानते हैं। अपनी एक कौमियत दिन बदिन मजबूत करके उसे बढ़ाने की कोशिश करेंगे। यहाँ के मुसलमान अपने को परदेशी समझेंगे, अनकी बात वे जानें। हम तो हिन्दुस्तान के सब बाशिन्दों को अेक ही समझते हैं।

'दुनियां की अब अैसी स्थिति हो गई है कि या तो सब देश आपस में लड़कर मनुष्य जाति को ही खत्म करदें, या अपने होश सँभालकर सब के साथ मेलजोल करके बन्धुता को कायम करें। हमारा फर्ज हमारे सामने स्पष्ट है। हमें तो हिन्द की भी सेवा करनी है और पाकिस्तान के लोगों की भी। हम अपना विश्वास क्यों खोयें? आज जो लोग नहीं मानते हैं वे भी कल हमारे पास आनेवाले हैं ही। हमें अपनी नीति संकुचित नहीं करनी है।'

२० जुलाई १६४७ 'हरिजन सेवक' रुद्र को अभाड़ना'

'श्री सी० राजगोपालाचारी को प्रो. अेच० जे० भाभा की सदारत में अणुशक्ति की खोज के लिए अेक कमेटी कायम करने का श्रेय मिला है।

अपने बयान में अैसी अेक कमेटी कायम होने की बात का अैलान करते हुअे राजाजी विश्वास दिलाते हैं कि हिन्दुस्तान की अणुशक्ति को फिजूल खर्च या बरबाद नहीं होने दिया जायगा।' वे आगे कहते हैं -'अणुशक्ति से तालुकात रखनेवाली खोजों को सिर्फ बरबादी के कामों से जोड़ना गलत होगा।'

'अणु की खोज करना धनवान पच्छिमी मुल्कों का खर्चीला शौक है। अुन्होंने विनाश के देवता रुद्र को अुभाड़ने के लिअे या युद्ध की आग भड़काने के लिअे करोड़ों रुपअे खर्च किये हैं। हम उसके लिअे कितना रुपया खर्च करने के लिअे तैयार हैं? अगर इतना रुपया हमारे पास है तो अिस भूखों मरते देश में, जहाँ फी अेकड़ जमीन की अुपज दुनियांभर में सबसे कम है, हम अुसे पहले पशु-पालन और अनाज की पैदावार के क्षेत्रों में खोज करने पर क्यों न खर्च करें?

'बेशक, अणुशक्ति की खोज सिर्फ बरबादी के लिअे ही नहीं है? मगर इसके सिवा किसी ने और किसी काम के लिअे अुसका अिस्तेमाल किया है? दोज़ख को जानेवाला रास्ता अच्छे अिरादों से तैयार किया जाता है।'

(अंग्रेजी से) जे० सी० कुमारप्पा

२० जुलाअी 'हरिजन सेवक' 'समाजवाद २'

'समाजवादी को सत्य और अहिंसा की मूर्ति होना चाहिये। और अिस के लिअे अीश्वर में अुसकी जीती जागती श्रद्धा होनी चाहिये। सत्य और अहिंसा का मशीन की तरह पालन करना कसौटी के वक्त काम नहीं देता। अिसलिअे मैंने कहा है कि सत्य ही परमेश्वर है।

'यह परमेश्वर चेतनामय शक्ति है। जीव अिसी शक्ति से बना हुआ है। यह (जीव) शरीर में रहता है, मगर वह खुद शरीर नहीं है। अिस महान् शक्ति के अस्तित्व से अिन्कार करने वाला शख्स अपने में रहने वाली अखूट शक्ति से महरूम रह कर अपंग बनता है। बेपतवार की नाव की तरह वह अिधर-अुधर टकराता है और आखिर में कहीं भी पहुँचे बिना बरबाद हो जाता है। यह हालत हममें से बहुतों की होती है। अैसे लोगों का समाजवाद कहीं भी नहीं पहुंचता? करोड़ों अिन्सानों तक अुस के पहुँचने की तो बात ही दूर है।

'मेरा दावा यह रहा है कि अिसी खोज में से सत्याग्रह की खोज हुअी है। यह नहीं कहा जा सकता कि सत्याग्रह से ताल्लुक रखनेवाले सारे कायदे

बढ़ गये हैं। मैं यह भी नहीं कहता कि अिस के सारे कायदे मैं जानता हूँ। मगर अितना मैं दृढता से कह सकता हूँ कि सत्याग्रह से जो भी कुछ पाने जैसा है, वह सब पाया जा सकता है। सत्याग्रह बड़े से बड़ा साधन-हथियार है। मेरी राय में समाजवाद तक पहुँचने का अिसके सिवा दूसरा कोअी रास्ता नहीं है। सत्याग्रह के जरिये समाज के सारे राजकीय, आर्थिक और नैतिक रोगों को मिटाया जा सकता है।

(गुजराती से) नअी दिल्ली १३-७-४७ मोहनदास करमचन्द गांधी'

उद्धृत 'हरिजन सेवक' के पावन संस्मरणों का अंश, मानव का श्रेष्ठ रूप में बनाए रखने के लिए मार्ग-दर्शक हैं। 'प्रार्थना सभा' में सभी धर्म ग्रन्थों के वचन, उन्हीं शब्दों में उपस्थित किए जाते थे और भारतीय 'वेद' वचनों के साथ, 'कुरान' व 'बाइबिल' की आयतें भी पढ़ी जाती थीं। मेरे मन में भी वैसे वचनों का उसी भाषा में उद्धृत कर, आगे हिन्दी में सार उपस्थित करने की कामना थी जो काम कअी वर्षों से पड़ा हुआ आज प्रकाशन की देहली अर आचढ़ा है। उस 'शान्ति-पाठ' रचना को मैं श्रद्धापूर्वक 'महात्मा गांधी' की स्मृति में अर्पित करता हूँ। यह जन्मशताब्दी के अवसर पर किया जारहा महान् आयोजन विश्व में मानवता के सत्यस्वरूप को उपस्थापित करने में प्रतीक का काम करे ऐसी अभिलाषा है।

॥ ॐ ॥

समीक्षा

यह तो सही बात है कि आज के युग की मानवता का विश्लेषण कर सकना बड़ा ही मुश्किल काम है। यह भारतीय नागरिकता की ही बात नहीं है किन्तु भूमण्डल में आज मानवीय सिद्धान्त, अन्य नीतियों के प्रचलित होने से अभिभूत हुए हैं। प्रस्तुत रचना में जिस आदर्श का स्वरूप भारतीय संस्कृति के रूप में उपस्थित किया गया है उसकी आज यहां वस्तुस्थिति डावांडोल है। वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में, मानव के उज्ज्वल कर्मों का निर्देशन करने जब हम उपस्थित होते हैं तो समूचे विश्व की मानव जाति की ओर हमारा ध्यान जाता है। जो उन्नति इस युग तक मानव की हो चुकी है, वह अपर्व है किन्तु साथ ही मानवीय विचारधारा में सत्य के प्रति आज जितनी उपेक्षा है, हिंसा के प्रति जितना आग्रह है, वह भी स्वरूप मानवीय वृत्तियों में स्पष्ट झलक रहा है।

जिन आदर्शों को लेकर पार्टियां या दल ग्रथित होते हैं वे केवल भाषण और दिखावे के प्रचार मात्र के साधन में काम आते हैं किन्तु वस्तुस्थिति सदा उनसे भिन्न रहती है। सबको समानभाव में रखकर जिस साम्य भाव का प्रचार करना अभिष्ट है, हठ कर के जबरन उस वाद को, चाहे वह हजारों आदमियों की हिंसा करता रहे, दूसरे की स्वतन्त्रता व जीवन पर आघात करने के उपयोग में लाना ऐसे दलों का लक्ष्य रहता है।

सवाल यह है कि यदि व्यक्ति की व्यक्तिगत सत्ता हम स्वीकार कर लेते हैं और उसे व्यक्तिगत आचरण करने को स्वतन्त्र कर देते हैं, तो वह अपनी बुद्धिगत चमत्कार को विकास की ओर अग्रसर करता है। वह विकास मार्ग अन्त में समाज का हित करने में काम आता है अतः वह व्यक्ति व उसका प्रयत्न, सबके लिये समान हितकर है, तो सामाजिक है। समाज और व्यक्ति के सम्बन्ध मधुर हैं तो उस समाज की उन्नति व्यक्ति को क्रोड़ीकृत करके सामाजिक ही गिनी जाती है। व्यक्ति उसमें प्रतिष्ठित होते हुए भी देश व राष्ट्र का कल-पुर्जा होने के कारण उसी मशीन के नाम से सम्बोधित होता है। व्यक्ति की प्रतिष्ठा में जहां आस्था नहीं है और सब कुछ ही जहां समाज की ही सम्पत्ति है, वहां भी एक की प्रतिष्ठा डिक्टेटर में या ईश्वर के रूप में पूर्ण आस्था के साथ करना अनिवार्य होता है।

मानव के निर्माण में जैसे माता पिता का योग है और वह पंच महाभूतों या पर्थिव श्रेणी में गिना जाता है, वैसे ही पढ़ने, स्कूल जाने के साथ ही उसका सामाजिक जीवन प्रारम्भ होता है और उसकी शिक्षा-दीक्षा अन्त में समाज के उपयोगी होती है।

प्रस्तुत रचना में: भूगोल का प्राचीन 'ब्रह्माण्ड' से व 'प्रकृति' रूप में परिचय देकर, नभ के वर्णन में, जो उस समय ध्यान में आया ये समस्या मेरे विचार में उद्भूत हुई है कि व्यक्ति का क्या स्वरूप व समाज का क्या रूप। 'नभ' और 'समुद्र' का उदाहरण लें तो भी यही प्रतीत होता है कि छोटे व बड़े तारों का नभ में स्पष्ट आवास है और भिन्न-भिन्न होने पर भी एकता है। इसी प्रकार जल में व्हेल, मगरमच्छ व छोटी से छोटी मछलियां, जिनके कि आकार-प्रकार में भेद स्पष्ट है और ठीक इसी तरह 'जङ्गम' जगत (निरन्तर गतिशील संसार) में कीड़ी, मकोड़ी से लेकर हाथी पर्यन्त जन्तु, शेर के वन में हरिण और शशक आदि का रहते रहना, वृक्षों में पौध से लेकर घनघोर ऊंचे से ऊंचे वृक्षों की सत्ता। इन सब प्राकृतिक विषमताओं का निपटारा प्रकृति कैसे करती चली आ रही है जिसे कि मानव न कर सका वह कुदरत करके दिखाती है।

'भू-सत्तायाम्' के भू धातु से भूः, भूमि आदि शब्द बनें जिनकी कि सत्ता अक्षुण्य है। क्रिया का सतत गमनशील व्यापार 'भवतीति भूमि' इस विग्रह 'होते रहने की सत्ता या अस्तित्व' से, निरन्तर बदलती रहकर भी एक समाष्टि रूप में वह भूमि कहलाती है। मार्टिन हैडेगर ने भू (Being) में सुकरात से पूर्व विचारकों द्वारा निश्चय की गई व्याख्या में 'स्फुरणशील शक्ति का प्राकट्य और प्रकाशित रहने की सामर्थ्य से युक्त है' कहा है। बन्धुवर महावीर प्रसादजी ने 'आस्तित्ववाद' अपने ग्रन्थ में इसका बड़ा अच्छा विवेचन ग्रन्थकारों के परिचय के साथ दिया है और मैं आभारी हूं।

'आत्मा' शब्द का योग 'भू' शब्द के साथ देने से मैं इस 'भवतीतिभू; में चेतना क्रियाशील आत्मतत्व की सत्ता स्वीकार करता हुआ इसकी गति को 'सदातन सनातन' कहता हुआ 'सातत्य गमन' निरन्तर क्रियाशील अर्थ में लिया है। उसी चैतन्यमयी चेतना की सत्ता का इतिहास आदि में वर्णन है वह चाहे भूगोल का इतिहास ही क्यों न हो। क्योंकि चेतन के शरीर बदलकर आने का स्थल व रंगभूमि यही है।

यदि वर्तमान के अस्तित्व में सत्ता के साथ सत्य की स्थिति हो तो उसके निदर्शन में 'सदागति-समीरणः' से मातरिश्वा वायु की स्थिति व गति का साक्ष्य है।

स्थिरता के निदर्शन में कर्मों की स्थिरता बताने के लिये वेद मत्र का अर्थ 'रुक्मवक्षस:' में 'चमके में गमनागमन छुवा, स्थिर होती ज्योतिवीर दृढकी' कहने का तात्पर्य यश और कीर्ति की उज्ज्वलता से है जिसके साथ यह स्पष्ट निर्देश है कि यदि उसके कर्म नीच हैं तो 'श्वा, काक' की उपाधि से भी वह भूषित हो सकता है। कर्म परम्परा की उत्तमता में ही तो महापुरुष, महात्माओं आदि के नाम आते हैं। अतः इस प्रेम मार्ग में कौन से उत्तम कर्म (चन्द्र विजय) और कौन से बुरे कर्म, महात्मा गांधी की हत्या, सुकरात को विषपान और ईसा को सूली आदि किये जा रहे हैं।

'गन्धवती पृथ्वी' के लक्षण को साधारण सुगन्ध और दुर्गन्ध से इस लिये यहां तुलित किया कि 'मानव की मानवता' परखने का साधन उपर्युक्त साधन 'रुक्मवक्षस:' के प्रमाण पर निश्चित करो, मानवता की गन्ध जिसमें हो और आदर्श की तरह चमके वह 'गन्धी' 'गांधी' के नाम से तुलित है।

यहां से कर्ममार्ग चल पड़ता है और कर्मों में 'शम' व 'दम' प्रधान हैं। 'शम' से ही 'शान्ति' और मानव के मन व राष्ट्र, भूमंडल की शान्ति चाही गई है और उसके विधायकों से नम्र निवेदन 'मारक भीषण-अस्त्रों का प्रयोग न करने का आग्रह' इसलिये किया है कि आज के मानव ने 'गतिशक्ति' का अनुसंधान अद्भुत रूप से किया है। और ये ही उसे देवत्व दिलाएगा वह 'कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुं समर्थः' होकर, अपनी सुध-बुध न खो बैठे यह आशंका है।

कर्म परम्परा में इस सदी की 'अणुशक्ति' का विवेचन है, जो अति सूक्ष्म तत्त्व का विश्लेषण मेरे मध्यम-पुत्र डा० रविदत्त शर्मा ने कुछ नकशे वगैरह बनाकर समझाया था, दिया है।

इसके बाद इस तत्व द्वारा उत्पन्न तीन शक्ति स्वरूपों को भारतीय संस्कृति के अनुसार तीन महाशक्तियों 'श्री महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती' के रूप में किया है। 'विज्ञान ज्ञान का रूप रहा, जब आत्म ज्ञान न हो जन में, अज्ञान यही कहलाता है,' मन या इन्द्रिय आवेग को दमन न कर सकना और आवेग के वशीभूत होना आदि अ-ज्ञान है।

'सत्य-अहिंसा' गांधीजी का मूल मन्त्र स्मरण कराने का आग्रह जिसे 'पाठ' कह सकते हैं, उपस्थित है। विकास का अवसर देकर बीज पनपाना और 'वाशिष्ट योग' के निर्देशानुसार बीज का दो संपुट वाले कपालों में खूब आंच लगने से बीज में सोम तत्व की स्थिति, जो पोषक तत्व है समाप्त हो जाती है। भारतीय दृष्टिकोण से 'सोम' को 'औषधीनांपतिः' कहा गया है। यदि आधिभौतिक चन्द्रमा का विश्लेषण किया जाये तो जैसी सोम-स्वरूपा (उत्पादन

सामर्थ्यवती) पृथ्वी है वैसे ही चन्द्र धरातल में भी पोषक तत्वों की सत्ता होनी चाहिये, क्योंकि वह 'अमृत' अर्थात् 'अ-मृत' कोई इस प्रकार का सजीव रस इसमें प्राप्त होना संभव है ।

जिस विद्या, बुद्धि, बल को वर्तमान तक ला पहुँचाने में मानव ने योग दिया है वह ईसा की बीसवीं सदी की उपलब्धि व्यर्थ में ही नष्ट न हो जाय और भस्मासुर राक्षस का वरदायी कंगन ही उसकी मृत्यु का कारण वह स्वयं न बने, ऐसी आशंका पुराण कथा में वर्णित है ।

यहां से आगे धारा का प्रवाह अंग्रेजी भाषा के उत्तम वचनों की ओर मुड़ता है, जिनके कि हिन्दी अर्थ व नाम साथ ही दे दिये हैं । इसीप्रकार अरबी य उर्दू आयतों का हिन्दी अनुवाद आदि मानव को मानवता की परख करने के अर्थ में दिए हैं । पंचशील सिद्धान्त जो स्व० नेहरू ने बताए थे प्रायः आज देशों की परस्पर आधारभूत संधियों की भाषा में सर्वत्र वे ही प्रयुक्त होते हैं ।

जैसा कि हाल में भारत आये हुए अमैरिकन राष्ट्रपति श्री निक्सन ने बिदा होते समय ता० १ अगस्त को कहा "This means that we can work more effectively togather than in the past-work that will transcend national concern and will help achieve the goal of our desire mutually shared for peace, friendship, freedom and justice " Mr. Niscon said

These principles go for beyond the frontiers of any country or continent; They pervade the world itself" he aded. **The Times of India, Saturday, August 2, 1969.**

उनने कहा कि भारत का भविष्य समुज्ज्वल होने से एशिया के अन्य देशों का अभ्युदय होना भी सम्भव है । प्रस्तुत उद्धरण में 'म्यूच्यूअली शेयर्ड' पद का परस्पर रजामन्दी से समभागी होना अर्थ है। किन अमूल्य वस्तुओं के लिए (उदाहरणार्थ) शान्ति (परस्पर युद्धाभाव), मित्रता (शत्रुता का अभाव), स्वतन्त्रता (लिखना पढ़ना आदि व जीवन की आजीविका आदि चुनने व विचार में स्वातन्त्र्य,' स्वतन्त्र का न्याय के साथ योग करते हुए पांचवीं वस्तु न्याय जिसका निर्देश प्रेसीडेण्ट ने किया, ये ही संसार के सदा से चले आते हुए उत्तम-सिद्धान्त पांच हैं । और ये सारे विश्व में व्याप्त होकर विश्व में शान्ति और सद्रूप की प्रतिष्ठा कर सकते हैं ।

प्रस्तुत संकलन में 'प्रेसीडेण्ट लिंकन' के सिद्धान्त बताकर 'लिंकन से लिंक जोड़कर ही कैनेडी अमरीका में जन्में', 'प्रेसीडेण्ट कैनेडी' की उक्तियां

आदि बताई गई हैं, उसी में लिंक जोड़ने के लिए वर्तमान शान्ति प्रस्तोता 'प्रेसीडैण्ट निक्सन' के पांच लक्ष्यों का ताजा उद्धरण उपस्थित किया है। इस समय अपर नक्षत्र 'चन्द्र धरातल स्पर्श' का काम इन्हीं के कार्यकाल में हुआ है अत: ये बधाई के पात्र हैं।

'चन्द्र धरातल' का स्पर्श मानव की सच्ची क्रान्ति का पूर्णत: अहिंसक कदम है। प्रस्तुत रचना जिसका निर्माण काल २० बरस से चलकर बदलते जिस रूप में श्रोताओं के सन्मुख आ रहा है उस रूप को भी बने कम से कम १० वर्ष हो चुके हैं। स्व० डा० श्री सम्पूर्णानन्दजी, भूतपूर्व राज्यपाल, राजस्थान, जो अनेक भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वान्, भारतीय संस्कृति के अनन्य प्रेमी थे। जब ये ग्रन्थ उन्हें दिखाया तो उनने जो सम्मति दी है, वह प्रकाशित की जा रही है जो दिनांक अक्टूबर १६, १९६२ ई० की है। और अतएव मैं उन्हें अपनी ओर से 'श्रद्धाञ्जलि' अर्पित करता हूं।

यह प्रसङ्ग इसलिए दिया है कि पुस्तक का लिखा जाना एक अर्से से चलता रहा जब कि स्वप्न में भी चाँद पर मानव के पहुंचने की आशा नहीं थी। तब ही लिखा गया:–

'परिभाषा सीमित शब्दों में अणुशक्ति अस्त्र के साथ कही,
यह शक्ति-निचय उन्नति-कारक, पर शस्त्र-विनाशक बुरा यही।'
'ताकत को बुरी न कह बैठो, है यूज बुरा इन कामों में।'

ता० २१ जुलाई सन् १९६९ इस्वीं के महिने में, जब कि मैं प्रस्तुत रचना की भूमिका लिख रहा हूं, रात को २ बजे तक कमैण्ट्री सुनते मानव का यान 'ईगल' जब चन्द्र धरातल में उतर जाता है तो इस खबर को सुनकर, जिसकी कि मैं प्रतीक्षा में था, प्रसन्न हुआ कि मेरी रचना में जो मैंने निम्न लाइनें लिखी हैं वे ता० २१ जुलाई के दिन साकार हुई। जब कि लिखते समय मुझे, मेरे जीवन में, 'चन्द्र-धरातल-स्पर्श' के घटित होने का विश्वास नहीं था। खयाल में वैसे ही ५–७ वर्ष पहिले ये भावना जमीं और लिखा गया:–

'नभ झुककर मेलजोल करने, अपना कुछ हाथ बढ़ा देगा,
धरती का मानव तब ऊपर वास्तव में उठता जाएगा।'

क्या आज इन मेरी नाचीज पंक्तियों को अन्य लोक में अभियान करने वाले, देवता स्वरूप एस्ट्रानाट, श्री नील ए. आर्मस्ट्रांग, जो प्रथम-मानव हैं, जिनने कि चन्द्र धरातल-स्पर्श में पहल की, दूसरे श्री एड्विन आल्ड्रिन जर, हैं, तीसरे श्री मिचेल कोलिन्स, जिनने चन्द्र परिक्रमा की। चन्द्रतल पर पांव रखते हुए आर्मस्ट्रांग ने कहा, 'यद्यपि यह मानव का छोटा सा कदम है लेकिन

मानवता के लिए यह एक बहुत ऊंची छलांग है ।' इन चन्द्र यात्रियों–नील आर्मस्ट्रांग और एडविन एल्ड्रिन जर्र–ने 'ओपीक'–धातुफलक (ताम्रपत्र) चन्द्र धरातल पर छोड़ा । जिस हर खुदे शब्दों को आर्मस्ट्रांग ने जोर से पढ़ा:–

"Here men from the Planet Earth first set foot upon the Moon, July 1969 A.D.–We came in peace for all Mankind." शब्द हैं:– 'यहां मानव ने पृथ्वीनक्षत्र से (आकर) प्रथम चरण रखा, चन्द्रमा (चन्द्र धरातल) पर जुलाई १९६९ ईस्वीं में "हम यहां पर सारी मानव जाति के लिए शान्ति कामना लेकर आए" । यद्यपि यह शुभ कार्य ११ वर्ष से चल रहा था और २५ मई १९६१ को 'राष्ट्रपति कैनेडी' ने मानव को चन्द्र धरातल पर उतरकर सकुशल लौटा लाने का लक्ष्य निर्धारित किया था । जिसे भी करीब ७-८ वर्ष हो गए ।

पुस्तक छप जाने के बाद, भूमिका के समय घटित इस महाश्चर्यमयी भूमिका के सूत्रधार इन तीनों देवों को मैं अपनी ओर से धन्यवाद इन शब्दों में अर्पित करता हूँ:–

ओ, 'नील आर्मस्ट्रांग' प्रथम, मानव हो लोक धरातल के,
पर अंतरिक्ष में चन्द्रलोक, तुम जा पहुँचे स्वदेश-बल से ।
दुसरे श्री 'एड्विन आल्ड्रिन जर्र', क्या सामाजिकता लाने को,
साथी की मदद, साथ करने पहुंचे, द्वितीय-मानव, जय हो ।
तिसरे साथी, जो परिक्रमा ऊपर विहंग में करते थे,
वे 'मिचैल-कौलीन्स', धन्य, धन्य, तुम देव वस्तुतः पृथ्वी के ।
यह भारतीय राजस्थानी जयपुर का मानव कहता है,
मानव जगतीतल का देखो, कैसी छलांग भर सकता है ।
उत्तमता का आदर्श यही, तप, कठिन परिश्रम, क्षमता का,
मानव की दृढता, आत्मशक्ति का, यही परीक्षा अवसर था ।
हिम्मत की कीमत खरी मित्र, यह विश्व आज देता तुमको,
अन्तर से आशीर्वाद भला, यह शान्ति कर्म पावन, जग को ।'

'ईगल' की खिड़की चन्द्रमा पर खुलने के साथ साथ, जो मानव इतिहास में स्वर्णिम रेखा खिची है और जिन वैज्ञानिक महानुभावों ने योजना का निर्माण किया है, मशीन रूप कार्य में परिणत करके योगी और जादूगर के समान आश्चर्य का कर्म, जो एकाङ्गी-सिद्धि नहीं और न झूठी आंखों की बन्दिश, किन्तु शुद्ध वैज्ञानिक-कर्म है, जिसकी कि परम्परा आगे से आगे निश्चित रूपरेखा में विकासोन्मुख है । श्रमिकों का महत्त्व श्रम बिना किसी भी काम का न बनना है और अरबों डालर देकर धन की योजना, क्या ये सब काम मानव के लिए नहीं हैं ? क्या चन्द्र धरातल पर 'शान्तिः शान्तिः शान्तिः'

का मानवीय-भाषा का पाठ लिखकर वहां स्थापित नहीं किया। जिसका कि पाठ श्री महाभारतकार वेदव्यास के वचनों जैसा दिखाई पड़ता है:–

'उर्ध्वबाहु विरोम्येष न च काश्चिच्छृणोति मे ।
धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः किंन सेव्यते ।।'

यह कर्म मनुष्य का धर्म है और उसे मानव-धर्म के निश्छल पालन करने से सफलता मिलेगी। वेद भगवान भी:––

'शान्तिरस्तु, तुष्टिरस्तु, अविघ्नमस्तु, आरोग्यमस्तु, सर्वकर्मसमृद्धिरस्तु, धनधान्यसमृद्धिरस्तु ऐश्वर्यमस्तु,' आदि उपदेश देकर, आत्मशान्ति, सन्तोष; कार्य का बाधारहित होना, शरीर का स्वस्थ रहना, सब कामों में सफलता की सिद्धि का होना, धनधान्य की समृद्धि का होना, और मानव की उत्त-मोत्तमता ऐश्वर्य की प्राप्ति हो ऐसी कामना अभिव्यक्त की है जो मानव-मात्र की हितकर है।

मानवीय भावों को लेकर दर्शन के सिद्धान्त व पर्यटकों का आना-जाना, और देशों की विभिन्न संस्कृतिमय सुषमा को देखकर प्रसन्न होना किन्तु साथ ही यह भी भाव प्रस्तुत है कि जब मानवीय विविधता इस शक्ति (एटमी) द्वारा विनष्ट हो जायगी तो फिर यात्रा और पर्यटन का क्या महत्व होगा। फिर तो 'पिंजरे के सिंह' के समान, या हिटलर के तहखाने में भी छुप सकने के समान, हालत उन भीषण दानवों की होगी जो मानवता का विनाश, घास के तिनके की तरह तराश कर ढेर कर देना चाहते हैं। इसी का निदर्शन है कि वह किये हुए 'वह कर्म बताता साफ-साफ क्या गोरा है या काला है', चाहे हिंसक कर्म गिनो या मानव में भेदभाव करने का घृणास्पद कर्म।

इसमें रूसी भाषा का एक स्टैन्जा डिक्शनेरी से देखकर बनाया है, भाषा का आस्वाद कराने को। अभी इस प्रकार के ५० से ज्यादा स्टैन्जा तैयार हैं और श्री तुलसीदासजी के शब्दों में 'स्वान्तः सुखाय भगवान् रघुनाथगाथा' की तरह एक धुन है जिसमें 'महाभारत शान्तिपूर्व की जनक-यक्षिणी संवाद व फिलेमन व बासस्' की कहानी पर कुछ ४० स्टैन्जा लिखित हैं अतः फिर कभी द्वितीय, तृतीय पाठ प्रकाशित होगा तब इनका प्रकाशन होगा, यह प्रथम पाठ है।

पाठ, नए-नए पढ़ने, पुराने पढ़े हुए की आवृति करने, साथ ही उसे अपनी धारणा में उतार कर नैष्ठिक बनाने को, कहते हैं, जिससे कि आत्मो-द्धार भी हो जाय, ज्ञान प्राप्त हो और कर्म के सन्मार्ग पर चलते रहने की प्रेरणा मिलती है। आंखों के अक्षर देखने से, अन्तर में भाव स्थिर होने लगते

हैं जब कि उस लिखे का अर्थ (प्रयोजन, लक्ष्य) स्पष्ट होता जाता है और किसी निरपराध को नुकसानदेह हो तब क्योंकि–

'हम सत्यनिष्ठ भारतवासी सच्चे स्नेही के साथी हैं,
हैं विश्व-प्रेम के साधक हम, विश्वासयोग्य जितकाशी हैं।,

इस उक्ति में अभिमान वचनों की सी प्रतीति होती है किन्तु जैसे हम अपनी देशभक्ति से ओतप्रोत भावना बनाते हैं वो दृढ़तासूचक है न तु घृणापरक क्योंकि हमने प्रारंभ में ही 'इस भू मण्डल के भूतल पर' लाइनें इसीलिए रखी थीं। हम का अर्थ एक मानवता की उत्तमता के निदर्शन मात्र के लिए व्यवहृत है, जैसे एक व दो। इस पाठ (रचना) की भी उद्भूति मुझमें कैसे हुई वे लाइनें जिनका कि वर्तमान की राजनीति, विश्वनीति आदि से संबंध हो सकता है-'तुम तुम्हीं रहो, हम हमीं रहें, हम (हम सब) को हममें (परस्पर में) रमने दो।'

'तुम तुम्हीं रहो' का अर्थ तटस्थता है और वैसी ही विरक्ति, 'हम भी आपस में मिले रहें, और मेलजोल न होने से तटस्थ रहें, किन्तु यह बात समाज में रहकर समाजवाद से पलायन जैसी दिखती है जैसा कि बड़े देशों में ऊपर के तल्ले के रहने वाला नीचे के तल्ले के दुःख, दर्द का सङ्गी ही न हो–अतः 'हम सब को हममें रमने दो' का सिद्धान्त पसंद आया कि विविधता रखते हुये भी एक रूपता के सिद्धान्त को अग्रसर करने को, जिसका कि अर्थ आत्म–विनोद या रमण करना है, न कि झंझट या लड़ाई–झगड़ा बढ़ाने को। जिसका कि निर्देश ईशावास्पोपनिषद् ने किया कि 'हक का खाओ' और वर्तमान में गाँधीजी ने उस नारे को बुलन्द किया फिर भारतीय मानव सिद्धान्त से च्युत होने की कपट की बात करें ! इन लाइनों को आज से करीबन १५-२० वर्ष पहिले, राजस्थान की संस्कृत भाषा के प्राण, पूज्य श्री लक्ष्मीलालजी जोशी ने देखा था आज वे ही भाव पुष्पित व पल्लवित होकर विश्व-शान्ति के अर्थ अर्पित किए गए हैं।

'नाद' टन्न के एक टंकार के बाद अपना अनुरणन छोड़ता है जो ध्वनि या गूँज के नाम से प्रसिद्ध है। यह सारे शरीर की चेतना में गूंजती है। लिखे हुए का उच्चारण सहित पारायण करना एक ऐसा कर्म है, जो यदि एकान्त में एक आदमी के द्वारा किया जाय तो भी वह पास-पड़ोस तक पहुंचता है, अतः एकाङ्गी होते हुए भी सामूहिक या सामाजिक है। जब यह परंपरा निरन्तर चलने लगे तो बाहिर का शब्द भीतर गूँजता रहता है; एक के नहीं दो के नहीं प्रेमी और सामूहिक वृत्ति वाले सहृदयों के हृदयों में न कि शुष्क 'पाठ परायण' करने वाले असहृदयों के हृदयों में, गूँजता है।

'ध्वनि, गूंज, नाद' अनेकों की मिलकर एक होजाती है और राग के समय पर सारङ्गी, तबला, सितार (स्थाई) गूँज को मदद करते हैं अतः एकान्त योगी का योग भी 'नाद' को 'अनहद-नाद' में, बहुल संज्ञकों का एकीकरण में प्रयत्नशील है। उधर 'प्रार्थना प्रेमी' अनेक, एक स्वर में स्वर मिलाकर, उसे बोलते हैं– जैसे भारत में वेद पाठ होता है। पाकिस्तान व अरब देशों में नमाज व कलमा, यहूदी जरथुस्त्र में 'रविवारीय सामूहिक- प्रार्थना–आदि इसी निमित्त होती हैं, निदर्शन है कि प्रार्थना का वही सामाजिक रूप कायम रहें, एक स्वरता हो आदि आदि।

प्रस्तुत रचना के भी अन्तिम स्टैन्जा में–

'सतसङ्गों में सब का ही स्वर आपस में मिलता जाएगा,
वह अनहद नाद जगा उर में, परता को दूर भगाएगा।'

'स्व' व 'पर' की भेद दृष्टि का विनाश योग, वह चाहे शारीरिक हो या मानसिक किन्तु 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म, नेह नानास्ति किंचन' सामाजिक-भाव है।

'हों वर्ण विलक्षण या स्वर भी, उच्चारण, भाषा, विविध रहें,
पर अर्थ–व्यंजना एक रही, चाहे मानव वो कहीं रहें।'

उच्चारण, भाषा, वेश, भूषा, प्रकृति आदि में भले ही वैषम्य हो पर भाषा में जैसी भावाभिव्यक्ति सब विश्व के मानव की एकसी है, वैसी होना आवश्यक है।

'फिर यह स्वदेश या वह विदेश का भेद न मन में उठने दो,'

अपने पराए का भेद न रहेगा कब, जब भगवान वेदव्यास के सिद्धान्त 'मम' से मृत्यु (जीवनरस का अभाव) और 'न मम' कहने से आमद, जीवन, उल्लास व विकास, स्वतः आत्मा में, समाज में उत्पन्न हो जाते हैं। अतः वे अवरोध (barriars) कँटीले थे वे दूर हुए, अब सर्वत्र स्वाच्छन्द्य है, कहीं विषमता, अधःपतन, कूटनीति को स्थान नहीं। इसीलिए अपने व पराए देश में भेद न होना, व्यापकता, एकरूपता का लक्षण है।

ये सब आह्वान मानव को किए जारहे हैं। उद्‌बोधन के रूप में मानवता को पाठ रूप में बार बार सुनाने की लगन है।

'तुम हम सब एकरूप हो लो', यह एक सैद्धान्तिक नैष्ठिकता का परिचायक वाक्य है जिसका अर्थ समीकरण है। और उसका उदाहरण है–

'हम सब को हममें रमने दो', इसका अर्थ है निश्चितता, भय रहित आत्म–विश्वास, प्रतिष्ठा और वैर भाव का त्याग, आनन्द और परमानन्द प्राप्ति के अनन्तर प्रसन्नता को 'रमण' शब्द 'अपने धातु 'रमु क्रीडायम्' की

प्रकृति, भावना को अभिव्यक्त करता है। 'योगी लोग जहाँ या जिसमें रम रहे हों, या जो आत्मविभूति संगठित सामाजिकों में संगठन भावना के बल देने से परस्पर एकीकरण द्वारा सम्पन्न हो रही हो। अतः शान्ति या शुभ कर्म में सभी सामाजिकों को मानवता की रक्षा के हित अग्रसर दृढ़तापूर्वक होने दो।

अथवा जो विशिष्ट विभूति मानव को मानव होने का परिचय कराती है और स्वच्छ हृदयों में जिसका अमल तेज प्रतिफलित होरहा है वह व्यापक चैतन्य राम, आत्माराम, मनोभिराम, चैतन्य आत्म रूप में शरीर में रमण करने वाला अपना है।

मोजूदा भारतीय नीति भी पूर्ण समन्वयात्मिका है और अपने को इसी लक्ष्य की ओर प्रेरणा देने वाली है जैसा कि भारत की प्रधान मंत्री श्री इंदरा-गांधी ने प्रसीडेण्ट निक्सन से बातचीत में भारतीय नीति शांतिपूर्ण दुहराई। राजस्थान के मुख्य मन्त्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया ने श्री भक्तदर्शनजी, राज्य-शिक्षा मन्त्री की उपस्थिति में जुलाई में कहा था कि भाषा का मेलजोल 'त्रिभाषा फार्मूला' के आधार पर प्रान्तीय भाषाओं के एकीकरण से आबद्ध हो जिसका समन्वय बढ़े प्रस्तुत रचना में भी भाषा भावों की सभीकरण का प्रयत्न किया गया है।

रचना पाठकों के सम्मुख है जैसी भी है और सम्मतियां मैं इसके साथ अभी इसलिए प्रकाशित करना नहीं चाहता हूँ कि पढ़े बगैर, भावना का मस्तिष्क में धूमे बगैर स्वीकार करना औपचारिकता है। भविष्य में प्रिय पाठकों की ओर से मार्ग-दंर्शन मिलेगा तो अन्धकार का विनाश व सूर्य का प्रकाश चमकेगा। प्रार्थना–

'ॐ द्यौःशान्तिरन्तरिक्ष ँ शान्तिः पृथिवी शान्ति रापः शान्तिरोषधयः शान्तिवानस्पतयः शान्तिः विश्वेदेवा शान्ति सर्वँ शान्तिः शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।'ॐ

शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

चाँपावतजी का मन्दिर
जौहरी बाजार, जयपुर
स्वतन्त्रता-दिवस
१५ अगस्त सन् १९६९ इस्वीं।

कथाभट्ट जगदीशचन्द्र शर्मा
साहित्याचार्य
प्राध्यापक–साहित्य,
महाराज संस्कृत कॉलिज, जयपुर।

राज्य भवन
जयपुर
दिनांक ६ अक्टूबर, १९६२ ई०
आश्विन १४, १८८४

प्रिय महाशय,

आपकी रचना देख गया। पद्य के सम्बन्ध में तो मैं सम्मति देने का अधिकारी नहीं हूं परन्तु जिस विषय को आपने लिया है वह तो परमावश्यक है ही। रचना लौटा रहा हूं ताकि आप इसको किसी पत्र में दे सकें जिससे इसका उपयोग हो।

भवदीय

सम्पूर्णानन्द

श्री जगदीशचन्द्र शर्मा,
चांपावतजी का मन्दिर, जौहरी बाजार,
जयपुर सिटी।

॥ श्री ॥

"शान्ति-पाठ"

प्रस्तुत है मित्रो, 'शान्ति-पाठ,' यह वह 'पुराण' या 'गीता' है,
गाया जिसको सन्मानव ने, गाथा यह बड़ी पुनीता है ।

भारत की यही 'भारती' है, जन-गण की यही धारणा है,
जीएं, जब तक सब सुख भोगें, जीवो-जीनेदो, भाषा है ।

आशा है सभी जगन्मानव, भूले विचार को फिर पढ़ लें,
मानवता विकसित हो भू-पर, उसको विकास का अवसर दें ॥

श्रीः

(१)

इस भूमण्डल के भूतल-पर, ये फूल खिले हैं देश-देश,
जिनका वर्णन अनन्त अद्भुत्, भाषा, निवास, भोजन व वेश।
मानवता एक सूत्र में ही दिखती है, ओतप्रोत यहाँ,
इन्द्रिय-तन-मन आकांक्षाएं, हैं, साधारण सब यहाँ वहाँ।
भू-गोल, गोल आकार लिए, समवृत्त बनाती जाती है,
ऊपर खगोल दोनों मिलकर, ब्रह्माण्ड, प्रकृति की थाती है।।

(२)

नक्षत्र बड़े हैं या छोटे, झुण्डों में हैं या कुछ बिखरे भी;
पर चादर-नीली के मोती, हैं कौन बड़े या छोटे भी।
सब मिलकर रहने की रीति, ये द्यावा भूमि बताते हैं;
घन ऊपर से मोटी-छोटी, बूँदों को आ-बरसाते हैं।
पर्वत नदियाँ समतल-प्रदेश, धरती पर मिलते सभी जगह;
पूर्वा दिशि में, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में व्याप्त यही वैभव।।

(३)

आवेष्टित सरस्वान् से हैं, यह भू-मण्डल, जगतीतल भी,
छोटे से छोटे जीव यहाँ, और बड़े, बड़ों से बढ़कर भी।
उठता है ज्वार, कभी भाटा, उत्ताल तरङ्गें भी उठती;
छोटी छोटी उन लहरों से, इठलाता, शान्त दिखा, यह भी।
जीवों का खेल, विचित्र यहाँ, जीवों से जीव पनपते हैं;
लड़-भिड़ कर भी जीवित रहते, सानन्द सभी मिल रहते हैं।।

(४)

जल, जीवन, अमृत, वारि यही, क्षीरोदधि, क्षारयुक्त भी है;
'आपोनारा' यह कहलाता, 'आपो वै' नर उत्पादक है।
'अप एव ससर्जादौ' सुनते, अप बीज-मात्र है सर्जन को,
है 'अयन' यही 'नर' का संतत, इसको 'नारायण' कह भी दो।
जड़ में जीवन पनपा जल से, वह हरा-भरा दिखता जिससे,
आधार जलों का यह ही फिर, संयोग-योग होता इससे।

(५)

'भू-सत्तायाम्' से भूमि बनी, सत्ता इसमें जीवों की है,
'भवतीति-भूमि' यह विग्रह है, पालन करती प्राणों को है।
जो वर्तमान 'अस्ति-सत्' है, सत्ता है जड़ में चेतन की,
वह ही 'अतति इति आत्मा' है, सातत्य-गमन में रत होती।
सत्ता है सत्य, त्रिकाल-मध्य, यह भूत भविष्यत् में भी है,
'इति-ह-आस' यह ही कहता, आत्मिक, दैविक, भौतिक भी है।

(६)

अब भौतिक-जगत् सृष्टि का ही, विवरण हम प्रस्तुत हैं करते,
पृथ्वीतल पर सब सर्जन है, जल में भी जीव रहा करते।
जल ऊपर है, धरती नीचे, ऊपर पृथ्वी है जल नीचे,
है ओत-प्रोत, एकाङ्गी ये, हैं भिन्न नहीं, घुलते-मिलते।
रस-जीवन है बनता जिससे, वह 'रसा, धरित्री, धरणी' है,
धारण करती है जड़-जंगम, रस की सरिता यह बहती है॥

(७)

करते प्रणाम भू-मंडल को, इस विश्व सृष्टि, जगतीतल को,
भारत-भू, मातृभूमि को नित, इस जन्मभूमि, धरणी तल को।
यह कर्म-भूमि, यह समर-भूमि, निर्वाण-भूमि, यह भू, मा है,
आचार-भूमि, अध्यात्म-भूमि, आधार-भूमि प्रकृतिस्था है।
कृति से 'प्रकृतिः' विकृतिः विकार, वैकारिक-रूप इसी का है,
माया है, रूप बदलती है, जो व्याप्त रहे वह सत्ता है॥

(८)

'गौ' 'गच्छति', चलती है पृथ्वी, सब भूत इसी पर चलते हैं,
दिन रात पर्व पर सूर्यगमन, करते चन्द्रमा 'सुषुम्णः' हैं ।
किरनें भी सभी रश्मियाँ हैं, गो रूपा, जीव 'निर्ऋतिः' है,
जैसे वर्षा के वर्षण का, ज्ञाता है इन्द्र, बृहस्पति है ।
माता है अन्तरिक्ष जिसमें, वर्षा से भूपर गिरता है,
गर्भस्थ-जीव दिख पड़ता है, जिसका ये तत्त्व-विधाता है ।।'

(९)

'चलता है वायु मातरिश्वा, गति, चेष्टा, कर्म, स्पर्श इसका,
यह इन्द्र, मित्र, वरुणम्, अग्निः, यम आदि देव सब 'मातरिश्वा' ।
'भुवनेष्वन्तः आवरीवर्ति,' क्षेत्रज्ञ, पृथक अधिदेव यही,
आकाश शब्द गुण, तम, विद्या, वह स्वः प्रकाश, निश्चित्तम ही ।
जो क्षेत्र सत्व, रज, तम का है, 'रागात्मक द्वेषात्मक प्रकृतिः,'
चर-अचर सृष्टि के आखिर में, है वर्तमान, यह सत्त्व-प्रकृति ।।'

(१०)

'सत्त्वों की व्यापकता से ही, ब्रह्माण्ड सृष्टि होती रहती,
सत्ता से सत्य पनपने पर, सत्त्वों में निज प्रकृतिः होती ।
'यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति,' 'भ्राजन्तो अग्नयो यथा,'
जैसे वायु चलती रहती, समुद्र स्वयं ही बढ़ जाता, चमकीला
बनता तेज तथा ।
'आत्मा ततेर्वा,' 'आप्तेर्वा,' 'व्याप्त इव स्यात्' कहते हैं,
चल पाती परम्परा जिसकी, सर्वत्र व्याप्त है, सहते हैं ।।'

(११)

'सोने की तरह दमकती है, छाती उन 'रुक्मवक्षसः' की,
चमके में यद्यपि क्षणिक ज्योति, स्थिर होती ज्योति, वीर, दृढ की ।
जीवन की ताकत के पासे, डरता-सा यह कुछ, फेंक रहा,
यदि बुरा किसी ने कहा इसे, सह पाया नहीं, ये बता रहा ।
कहलाता सिंह, व्याघ्र बल पर, इन शब्दों से पूजा नर की,
श्वा काक, कहा यदि भाई ने, कुत्सा इसकी व्यंजित होती ।।'

(१२)

यह विश्व, प्रेम का मार्ग मित्र, सर्वत्र यहाँ उजियाला है,
ये कर्म बताते साफ-साफ, क्या गोरा है क्या काला है।
कर्मों का लेखा-जोखा ही, दानव मानव को बना रहा,
देवत्व दिलाता उसको यह, दुश्चिन्ता उसकी मिटा रहा।
यह गन्ध सत्य है सत्ता की, है 'गन्धवती पृथ्वी' देखो,
सौगन्ध्य और दुर्गन्ध सूँघ, मानव की मानवता परखो ।।

(१३)

मानव की मानवता का जो, अधिकार-पत्र, ले आते हैं,
मानव अधिकार सुरक्षित हों, का नारा अधिक लगाते हैं।
जिन का उद्देश्य, समिति तक ही रह जाता, वे क्यों इतराते,
मानवता कुचली जाती है, फिर भी प्रस्ताव बने जाते ।
पर, निष्ठा किन किन-की दृढ़ है, है अग्नि-परीक्षा सोने की,
पीतल की चमक न टिक पाती, छाती दृढ़तम हो लोहे सी ।।

(१४)

कायर से शान्ति बनै कैसे, समझाना 'शम' दम के सँग है,
इन्द्रिय-दम सबल बना देता, बलशाली की निष्ठा सत् है।
एकत्रित शक्ति-निचय से तो, सिद्धांत मनुज का दृढ़ होता,
सन्मार्ग प्रशस्त खुला होता, खुद माने, वह मनवा सकता।
जो हठ करता कुमार्ग के प्रति, निश्चय उसका हठ चला नहीं,
रावण सीता को चोर भगा, पर जीवन उसका रहा नहीं ।।

(१५)

माता का आश्रय ले जन्मा, पैत्रिक-पोषण से बड़ा हुआ,
भाई समाज का अंग बना, देखा सीखा कुछ कर्म किया।
'स्व' 'पर' का अर्थ लगा करके, स्वार्थों में उलझा अपने में,
नि:स्वार्थ कर्म का मान भुला, भूला, निज का सब करने में।
मतदाता से नेता पद का, गण में अग्रणी कहाने का,
कुछ लोभ हुआ मन में ज्यादा, सीधे डिक्टेटर होने का ।।

(१६)

मानव की बुद्धि-परीक्षा है, जीवन के इस अमूल्य-क्षरण में,
वह करे भलाई निज की भी, पर-सेवा व्रत भी हो मन में।
सोचा समाज ने मानव को, कितना अवकाश दिया उर में,
जीवन-यापन की सुविधाएं, सब कुछ दे दी, घर में, पुर में।
ये साधन, सृष्टि सनातन के, उपयोग करो, भोगो, छोड़ो,
आगे आने वाले भोगें, अवसर उन को देकर, जोड़ो ॥

(१७)

जो विश्व-सृष्टि होती आती, होने दो, उसको चलने दो,
रस की जो धार बही भू-पर, बहने दो, उसको बहने दो।
जब कोटि चरण औ कोटि हाथ, मिल श्रम करने उठते जाएं,
सोने का विश्व तभी होगा, उद्यम, उद्योग, अन्न पाएं।
नभ झुककर मेल-जोल करने, अपना खुद हाथ बढ़ाएगा,
धरती का मानव तब ऊपर, वास्तव में उठता जाएगा ॥

(१८)

निर्माण अगर करना अभीष्ट, इस युग का वर्तमान जो है,
मिल पकड़ो हाथ, हाथ से ही; सब कर्म करो, करना जो है।
बल-अबल परीक्षा आपस में, करने का हठ मत दिखलाओ,
अपने को चीन्हों साथी तुम, मत मतलब अपना ही गाओ।
तुम अगर पराई धरती को, रोटी, बेटी को छेड़ोगे,
खुद की गति भी रुक जाएगी, सामाजिकता यदि छोड़ोगे।

(१९)

देवत्व बनेगा कर्मों से, उन्नत तब भाल दीप्त होगा,
औदार्य्य विचारों में होगा, मानव जब सुसंगठित होगा।
'धी' धारणकर्ता 'सु-धीः' बनें, जब बोधन हो निज में पर का,
रसवती नदी यह प्रज्ञा ही, आदान-प्रदान करे जग का।
है वाक्-शक्ति, प्रथमा जिसमें, चिन्तन औ मनन निदिध्यासन,
विज्ञान, कला, साहित्य आदि, जिन में है भाषण और श्रवण ॥

(२०)

प्रेरणा प्रथम उठती मन में, तदनन्तर कर्म प्रसंग चला,
आए, पदार्थ सहयोगी बन, चिन्तन की परिणति कर्म सदा।
'अशनया' इसी को कहते हैं, है भूख लगी, यह जब जाना–
चूल्हा फूँका, आटा गूँधा, रोटी सेकी, खा तृप्त मना।
प्रेरणा क्रिया का बीज जान, द्रव्यादि सभी के रूप नाम,
कुछ लक्ष्य चिन्हयुत बना धरे, द्वितीया लक्ष्मी जग-प्रकृति नाम।

(२१)

अणुशक्ति खोजने का विचार, प्रथम श्रेणी में जिज्ञासा,
लेकर पदार्थ जोड़ा-तोड़ा, बन गई सिद्धि, वह हो द्वितीया।
बुद्धिः पदार्थ का आश्रय ले, निर्माण-रूप धरकर आई,
आणवी-शक्ति सजंन में आ, प्रतिफलित हुई जग में छाई।
तापक्रम 'परितः ईक्षण' कर, वैज्ञानिक-जगत् हिला मन में,
कहते, मानव की परमशक्ति, निर्मिति, विनाश दोनों इस में।

(२२)

हम जिन द्रव्यों के अणुओं को, 'न्यूट्रोन' 'इलैक्ट्रन' कहते हैं,
संघर्ष मचाकर उनही में, हम शक्ति-निचय कर लेते हैं।
संचित यह शक्ति खजाना है, श्री है, शोभा मानव की है,
उत्पादन, विहरण, मान, वृद्धि, लक्ष्मी का रूप महा ही है।
इससे आगे करना विनाश, सम्मत हो तो, वह कर सकते,
तृतीया संहारक शक्ति महा काली, व्याली, खेलें जन-से॥

(२३)

इसको तुम मारक-अस्त्र बना, फेंकोगे मूल-नाश होगा,
यदि अन्य उचिततम कार्यों में, करलो प्रयोग तो शिव होगा।
'यूरेनियम' का वह धातु रहा, 'यू. दो. सौ पैंतीस दागो जब,
भौतिक शास्त्री यह देख रहे, 'न्यूट्रोन-गोलियाँ' निकलीं तब।
अणु का भंजन यों हो जाता, ये चली परस्पर होड़ यहाँ,
टूटे जाते सब शक्ति जोर, शृंङ्खला बनी है ताप वहाँ।

(२४)

न्यूट्रोन गोलियों में से कुछ, 'यू. दौ. सौ अड़तिस' में खोते,
कुछ जाकर 'यू. दो. सौ पैंतीस, से भिड़े, तोड़ते अणु को ये।
इससे जो अधिक-ताप, गर्मी, शक्ति-स्वरूप में मुक्त हुई,
ये शक्ति-शृंखला चल-निकली, जो क्रिया-प्रतिक्रियाएं हो ही रही।
अणु भट्टी में यन्त्रित होती, गति सदा नियन्त्रित रहती है,
इस भट्टी में विच्छिन्न अणु, गर्मी का विकिरण करती है।

(२५)

अणु की तुलना कुछ–कुछ होती, वह सौर-मण्डलवत् है प्रदीप्त,
जैसे है केन्द्र-सूर्य-ग्रहगण, वैसे 'न्यूलकीयस्' अणु-मध्य दीप्त।
ग्रहगण सारे चक्कर लेते सूरज के, वैसे 'इलैक्ट्रोन'—
चक्कर करते 'न्यूक्लीयस्' के, ये कण 'प्रोटोन' औ 'न्यूट्रन'।
भारी ताकत 'न्यूक्लीयस्' की, यह जोड़ रहा इन दोनों को,
जब तोड़ोगे इन दोनों को, भीषणतम ताप बिखेरे वो।

(२६)

परिभाषा सीमित शब्दों में, अणुशक्ति, अस्त्र की साथ कही,
यह शक्ति निचय उन्नति-कारक, पर अस्त्र-विनाशक सच वह ही।
जो जो बनते हों नष्ट करो, उन सब का बनना खतरा है,
मानव के पुत्र पौत्र आदि, पिसते जाएं, यह चिन्ता है।
हो नाश मूल का जिस बम से, प्राणी की सृष्टि समाप्त करे,
प्रलयंकारी वह शस्त्र व्यर्थ, मानव, उसको ले, कहाँ धरे।

(२७)

क्यों उद्जन-अणु-बम पंदाकर, तमतोप यहाँ फैलाते हो,
ज्योतिर्मय, जोवन दोप बुझाकर, कुम्भिन–नृत्य रचाते हो।
क्यों इच्छुक हो सर्वस्व-लूँटकर, घर अपना नित भरने में,
यह दंभ, सत्य का नाशक है, है स्वार्थ, बुरा इस सपने में।
ये गड्डे गहरे खोद-खोद, मत कब्रों का निर्माण करो,
क्या यहीं दफन होना अभीष्ट, क्यों भला, मौत को नोता दो।

(२८)

विज्ञान ज्ञान का रूप रहा, जब ग्रात्मज्ञान न हो जन में,
ग्रज्ञान यही कहलाता है, बचकाना हरकत हो मन में।
कपटी विज्ञान बताग्रो तो, मानव का ह्रास मचाने को,
फैलाया मानव ने धूमिल, जग धूँग्राधार बनाने को।
मत 'सत्य-ग्रहिंसा' बिसराग्रो, गाँधी का मूल-मन्त्र सीखो,
इस ग्रात्म-शील की रक्षाकर, 'न्यूक्लीयस्-वोपन' नाश करो।

(२९)

विश्वास करो मानवता पर, कुछ विकसित इसको होने दो,
क्यों ग्रस्त्रों ग्रौर महास्त्रों से कुचले जाते, क्यों नाश करो।
ये घन-वैभव जग के सारे, छीना-झपटी से, क्या टिकते,
इतराना इनके बल पर ही, मानव को क्या शोभा देते।
उत्सर्ग सुपथ में करना हो, हमको तो भला, भला दिखता,
झगड़ा हो बाँट-बाँट खालो, फल-मीठा, सब्र रखे, मिलता।

(३०)

प्रिय मित्र, धर्म मानवता में, धारणा सत्य की स्थिर रहती,
जीवन-निर्माण मनुजता है, सत्कर्म किए स्थिति है बनती।
सोचा है कभी समझ पाए, मरने पर मानव गया कहाँ,
तुम ग्राज नहीं जिन्दा होते, तो कहाँ ढूँढते तुम्हें, भला।
जीवित हैं सब ही ग्राशा पर, ग्रागे ऐसा सुख भोगेंगे,
वह बीज नहीं, जो फल नहिं दे, जो बोयेंगे, वह तोड़ेंगे।

(३१)

यह कर्म, बीज की क्रिया ग्रहो, जिसमें जीवन सरसाता है,
यदि बीज नहीं तो वृक्ष नहीं, जीवाणु पनप क्या पाता है।
है 'सोम-तत्त्व' इन बीजों में, जीवन की परम्परा जिनमें,
भू-पर हरियाली इसकी ही, मानव की पीढ़ी है इसमें।
यदि बीज, कपाल-संपुट रख कर, तापे इसको या जा-भूने,
बीजत्व-सरसता जलकर ही वह नष्ट हुई, निर्बीज बने।

(३२)

अरणुबम से बीज गर्म होकर, उत्पादन-क्षमता, खो देगा,
फिर अन्न न उपजै धरती पर, धरती को बंजड़ कर देगा।
यों बीज-वृक्ष का यह नाता, मिटता ही मिटता जावेगा,
मानव का भी अस्तित्व-मिटा, नामोनिशान खो जाएगा।
निर्मानव या निर्बीज कहो, निर्जीव धरा यह रूठेगी,
भूकम्प-मचा, बाकी सबको, यह आत्मसात् ही कर लेगी।

(३३)

अब एक नहीं दो चार नहीं, नाना-राष्ट्रों ने यह पथ है
अपनाया, अस्त्र बना डाले, 'भस्मासुर' का यह कंगन है।
सोचो तो मौज, एक की हो, मंशाह बुरी डिक्टेटर की,
सेनापति, मार्शल, नेता की, 'जनरेशन' भोगे फल सब ही।
अब बचना मुश्किल दिखता है तह–खाने या मय–खाने में,
छुपने से काम न चल पाता, जलता जहान, गम-खाने में।

(३४)

हम कभी नहीं कहते भाई, ये अच्छे हैं या वे अच्छे,
जो सच्चे हैं वे ही अच्छे, सबसे सच्चे, सबसे अच्छे।
'ट्रयू-मैन वही जो 'फेथ' रखे, 'ट्रुथ' में जन जीवन में नित ही,
'रीअल्' मानव, है सब जग में, 'रीअलिस्टिक' दृष्टि रखो सब ही।
'फैनेटिक' 'फेम' न फैलाता, 'फैल्लेसी' उसके दिल में है,
'सावरैण्टी' कैसे जम पाए, 'आउट्, फेयर डीलिंग' में है।

(३५)

'माशार' 'माफ्वा' ऐसा ही, 'ल्यू नाइअोन फैला फोर्स' सही,
यूनियन बनाती ताकत को, मोटो बैल्जियम पुकार यही।
'आड आस् ट्रा पुर आस पेर अ', कन्सास का मोटो कहता है,
तारों पर भ्रमण न खेल समझ, आना–जाना सब मुश्किल है।
'अेड ट्वा, ले से ईल टे ड्रा', आशय इसका सीधा होगा,
तुम अपनी मदद स्वयं करलो, आकाश सहारा दे देगा।

(३६)

'ग्रैन यू इट् सेप् टीस्' कहैं, मोटो यूनाइटैड किंग्डम का,
वह प्रभु, मुस्काया है हम पर, जो काम कर रहे हैं सच्चा ।
'से डान् ग्रार मा टोजे', कहता है ग्रस्त्र झुके, देखो,
सिविल के ग्रागे, सेना के, सीविल होना उत्तम समझो ।
'ड्यू एट् मोन ड्रा' ब्रिटिश की, ग्रार्मी का, मोटो कहता है,
उस प्रभु को पाना, मानव का, हक है, सत् करतब करना है ।

(३७)

न्यूक्लीयस् वीपन् का प्रयोग, गलती है बड़ी, जल्द करना,
'से प्लू कुन क्रेम, से टुन फाट्,' ग्रपराध से बदतर यह खतरा ।
'ए क्वाम सर वरे मैण्टम्' भी, मस्तिष्क शांत ग्रपना करलो,
'डो सैन डो डिसे-इ-मस्,' शास्त्रों का कहना, सच समझो ।
'डल से एट् डी कोरम एस्ट, प्रो पैट्रि ग्र मोरी पैट्रि-ग्र',
बलि हो स्वदेश की रक्षा में, है मधुर-भाग्य ग्रौर उत्तम यह ।

(३८)

'विन सिट् ग्राम नी ग्र वर ई-टास्,' सर्वोपरि सत्य, बताता है,
'लै बोर ग्राम् नी-ग्र विन सीट,' श्रम सबसे ऊंचा निश्चय है ।
'जू बीला टे डे ग्रो,' प्रभु से, तुम प्रेम करो वह सच्चा है,
'वाक्स पाप्यूली वाक्स डी ई,' जनवाणी प्रभु की ग्राज्ञा है ।
'जस्टिशिया ग्रामनी बस्' है न्याय, हो जाय सुलभ सामाजिक को,
'जो एमू सास ए गापो,' जीवन से स्नेह प्रेम करलो ।

(३९)

'न', यी द किंगडम ग्रॉफ हैवन, इज विदिन यू,' ईसा कहते,
जानो, है, प्रभु का शक्तिपूर्ण साम्राज्य, तुम्हीं मे, सब ही के ।
भारत वेदान्त 'तत्त्वमसि' का, वह गहरा ज्ञान बताता ही,
हे श्वेतकेतु, तू वह ही है, यह ग्रात्मज्ञान, गुणाता ही ।
'लैट योग्रर लाइट् शाइन बिफोर मैन, दैट दे मे सी योग्रर गुड वर्क्स',
वह ग्रात्म-ज्योति चमकादो यों, पुरखे भी देखें, तव सुकर्म ।

(४०)

'थिंक नाट् दैट् ग्राइ एम कम टू डैस्ट्राय',
सोचो मत, मैं विनाश करने मानव को, ग्राया, कभी नहीं।
ग्रो ग्ररे पादरी-'बट् टू फुल फिल्' पूरा करने जो कमी रही,
'फालो मी एंड लैट् द बरी देग्रर डैड'।
बीती बातों को छोड़-छाड़, ग्रनुयायी मेरे कुछ होग्रो,
पाखण्ड जगत् का नाशक है, ये सद्विचार उर में धरलो।

(४१)

क्या है विरोध जन मानस में उत्तम चाहे कोई कहता,
पालन करना ही मुश्किल है, सच, कड़ुग्रा, तीखा ग्रौ गहरा।
हर देश जाति में उनके ही ग्रपने सिद्धान्त चले ग्राते,
जितना है सार ग्रहण करना, उतना जीवन में, सब करते।
मानव की प्रकृति, न ग्रब, स्थिर है, वह डाँवाडोल हुई देखो,
सिद्धान्त सत्य, ग्रब ग्रोझल है, दल दल का, दल दल है देखो।

(४२)

फैलेगा कितना यह मानव, दृष्टान्त कहानी का किसान,
श्री टालस्टाय ने कहा वहाँ, ढाई फुट केवल रहा मान।
ग्रब्राहम लिंकन कहते थे इस देश-प्रेम की पद्धति में—
जो जो सेवा करते, लड़ते, 'नीग्रो' वे 'नेशन' गिनती में।
है युद्ध कभी ग्रनिवार्य नहीं, 'जस्टिस्,' 'ह्यूमेनिटी', 'लिबर्टी' हो,
है न्याय प्रथम, मानवता फिर, स्वातन्त्र्य, मनुज का सम्बल हो।

(४३)

'निज की संस्कृति, योग्यता ग्रादि, धर्म स्वतन्त्र ग्राचार निजी,
केवल ये भेद-पटकने के साधन न बनें, हो निर्मिति ही।
मैं सत्य-भरोसा रखता हूँ, ग्रपनी संस्कृति व कर्म-धर्म,
बहु होकर भी मिलजुल रहलें, हो शक्ति बढ़ाने का प्रयत्न।'
लिंकन से लिंक जोड़कर ही, कैनेडी ग्रमरीका जन्मे,
वे बने राष्ट्रपति, शांतिप्रिय. कुछ दिन ही हुए, यहाँ पर थे।

(४४)

'ईसा से नेह करूँ मैं क्या, वह स्वयं प्रेम रखता मुझसे,
वह धर्म-ग्रंथ कहता मुझसे,' ऐसे से शब्द भला उसके।
'थोड़े से मानव ऐसे हैं, सच्चा नाता उससे रखते,
पर थोड़े से कमजोर लोग, केवल, ये दुहाई दे सकते।
वह स्वयं-सशक्त, अटल-निश्चय, सिद्धान्त प्रिय, वह सच्चे का,
वह जान रहा, ईसा खुश है, इससे, क्यों, प्रभु, वह सच्चे का।''

(४५)

'हो द्वेष नहीं मानव के प्रति, हो दयाभाव सब पर समान,
कर्त्तव्य कर्म, सत् पर दृढ़ हो, प्रभु की दी सच्ची परख जान।'
ये शब्द-खुदे ताबूत लगा, जो खुद के कहे हुए ही थे,
'आर. एफ. कैनेडी' ने समझा बन गए खरे अनुयायी वे।
बलिदान प्रकट करता साहस, मानव का ओज यही तो है,
हो 'भीष्म'-प्रतिज्ञा, ज्यों गाँधी' मार्टिन् लूथर किंग भी तो है।

(४६)

श्री कार्ल मार्क्स भी कहते हैं, 'शिक्षा यह व्यर्थ न समझो तुम,
यह कर्म, विश्व का सुखपूर्वक, चल पाए सीख बताते हम।
हर एक निजी करतब के बल, ज्यादा या कमती पाएगा,
आवश्यकतावश मिल सकता, हरएक को, जितना चाहेगा।
इससे मानवता विकसेगी, स्वातन्त्र्य, शांति, श्रम, सम-समता,
बन्धुत्व, हर्ष मिल पाएंगे, धरती के सब जन को शिक्षा।

(४७)

मैक्सिम-गोर्की, ये इटली के, कहते हैं, हम सबका जीवन,
तप-कर्म करें, जिससे चमके, चमकीला होले तन औ मन।
तुम लोग सभी ही स्वस्थ बनो, हो खुशी चमकती चेहरों पर,
सब किया-धरा जो दुःख पिछला, भूलो उसको तुम ओ नरवर।
निश्चय आए न कभी जूड़ी, दुर्दैव चोट भी कभी नहीं,
देखो ऊपर चमकीले ये तारे आकाश में दमकें ही।'

(४८)

गुरुवर रवीन्द्र का गीत यही, 'यदि सौख्य सृष्टि में भरना है,
बच्चो, युवको, बूढ़ो व्रत लो, मुस्कान हृदय में भरना है।
बालक की सौम्य मुखाकृति पर, जो हंसी बिखरती चुम्बन से,
वह खुशी कहाँ से आई है, नभ से उतरी प्रातः क्षण, ये।
गर्मी में प्रातः सुख-समीर, जब सिहरन पैदा करती है,
ठंडी ठंडी वह हवा बहै, अंगों को शीतल करती है।'

(४९)

ऊमर खैय्याम बड़े आलिम, जीवन के गुर को बता रहे,
'तुम ऐसा कर्म करो जिससे, पीछे के दुःख सब गलैं, बुरे।
आगे आ पड़ने वालों का, कुछ फिक्र न करना पहिले ही,
भय करना अरे बुरा-समझो, हँसलो, खेलो, कुछ पी लो भी।
ओ धर्म बताने वाले तुम सबको क्यों व्यर्थ डराते हो,
मैं कहता बिगड़ा है तेरा, यह जन्म, लोक अगला, सुन लो।'

(५०)

'बुद्धं शरणं गच्छामि' सदा, 'संघं शरणं गच्छामि' यदा,
भगवान बुद्ध कहते आए 'निर्वाण' प्राप्त कर, नहिं लौटा।
'वासना-अग्नि' में सृष्टि सभी, जलती जाती भूलो निज को,
ये जन्म-जरा औ राग-द्वेष, मिट जाएं सभी, उद्यम करलो।
करलो तुम नाश 'अहंता' का, मैं-मैं मिमियाना ठीक नहीं,
हो पूर्ण शान्ति तन में, मन में, संपूर्ण सुखों की प्राप्ति यही।'

(५१)

ये वर्धमान श्री महावीर 'कहते थे पार्श्वनाथ पहिले,
थे, ऋषभदेव तीर्थंकर भी, आवृत्ति सभी की हम करते ।
अपरिग्रह प्रथम जान लो तुम, परमाणुवाद औ कर्ममार्ग,
ये जीव सभी एकै-सङ्गी, तन नाश अनन्तर पिंड भार ।
स्याद्वाद कर्म का शोधन ही, 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्तं स्यात्',
उत्पत्ति, क्रमिक हो नाश और स्थिरता हो समझो वह ही 'सत्' ।

(५२)

श्री योगीराज अरविन्द कहैं, 'मैटीरियली यू आर नथिंग',
भौतिक वैभव के बल पर तो, मानव तेरी गिनती पासंग।
'स्पिरीच्युअली यू आर एवरी थिंग', औदार्य, त्याग, अध्यात्मतया,
तू सब कुछ है तप से मानव, है सहस्रबाहु निज समदृष्टया।
'नालेज लीड्स टू यूनिटी', यह ज्ञान एकता का स्रष्टा,
'इग्नोरैन्स टू डाइवरसिटी,' अज्ञान गिराता दे धक्का।

(५३)

रघुवंशकाव्य में, कालिदास के, वे दिलीप राजा कहते,
ओ सिंह! नन्दिनी को छोड़ो, बदले में, हम, निज तन देते।
मैं आँख मींच, अर्पण करता, इसको खा, भूख मिटालो तुम,
मिट्टी का पुतला मिट जाए तो सोच नहीं मुझको, क्या गम।
यह यश शरीर अक्षुण्ण रहे, तुम उसे बचादो गिरिजा-सुत,
कर्त्तव्य कर्म से डिगा नहीं-राजा, जन जन यह कह दें सब।

(५४)

यह यश शरीर गाँधी, नेहरू, औ तिलक, गोखले का रक्षित,
जीवित है चमक रहा जन में, आभा युग युग तक रहे फलित।
वे नेहरू आए, कुछ करने, करना था वह सब किया, चले,
भारत स्वातन्त्र्य-नीति रचकर, चलना सिखलाकर, अरे गए।
शिक्षाएं आज अमर उनकी, यह यश-शरीर रक्षित देखा,
आक्रमण किया जब भाई ने, तो भी न डिगा, निश्चल-रेखा।

(५५)

वे कहते 'अरे कसौटी यह, मानव जीवन के उन्नति की,
मिलजुलकर सभी यहाँ रहते, मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर भी।'
वे आए, मोहन करने को, वे राय राममोहन पहिले,
प्राचीन-नवीन पन्थ लेकर, करते थे बड़ा समन्वय वे।
जीवन के उच्चादर्शों का निर्माण, धर्म यदि करता है,
वह निर्मिति करके आज यहीं, भारत 'अशोक' को स्मरता है।

(५६)

हों कौम भला वह कोई भी, कर्त्तव्य प्रथम यह हो उसका,
अपनी आजादी की रक्षा, हो मातृभूमि की यह सेवा।
खतरा अन्दर से भी उठता, भीतर ही उसे दबालो तुम,
मत कदम, गलत रास्ते रखो, निज देश बचालो भरकर दम।
यह राग बुरा साम्प्रदायिकता का, पिछड़ेपन के, ये रँग-ढँग,
भाषा का भेद, विभाजन का, छोड़ो, हैं यह सब बुरे रँग।

(५७)

'रेस्पैक्ट म्यूच्युअल ईच अदर्स,' आदर, आपस में हो समान,
'को-एग्जिस्टैन्स' यही तो है, सामान्य-स्थिति, अस्तित्व-ज्ञान।
'इण्टर नेशनल डिस्प्यूट्स्' सभी, झगड़े अन्तर्राष्ट्रीय उठें
'म्यूच्यूअल अण्डरस्टैंण्डिग,' से, उन सब का हल सब ही करलें।
'बाइ पोसफुल मीन्स,' शान्ति जरिया, शम-दम से श्रद्धा से होए
'नान् अग्रेसन,' हो युद्ध नहीं, 'नान् अलाइमैण्ट' तटस्थ रह लें ॥

(५८)

यह पंचशील है मानव का, स्वाभाविक-धर्म बड़ा उत्तम,
भारत के ज्ञानी-मानव का, उद्घोष यही है आत्म-कर्म।
मिल-जुलकर रहना बुरा नहीं, मानव का मानव से अनुदिन,
चाहे वे देश हमारे के, या हों विदेश के मानव-गण।
मित्रता नहीं तो वह तटस्थ बन जाए, दुश्मन बने नहीं,
गत्यवरोधक झगड़े हल हों, वार्ता से, 'नेहरू' कहै, यहीं ॥

(५९)

यह नीति, मार्ग पर बढ़ने का, अवसर देती, सन्नीति यही,
यह गोलमेज का सम्मेलन, है प्रेम पुरस्कृत, सम्मुख ही।
अपनी-अपनी कुर्सी भरलो, खाली न रहे वह, यह देखो,
अपने को चीन्हों अन्तर में, सब ईर्ष्या-द्वेष साफ करलो।
निर्दोष बनो, सब ही साथी, सब देश–देश के नेतागण,
समता हो, सब का लक्ष्य यहाँ, चमकेगा इससे जन–गण–मन ॥

(६०)

यों दिल को पाक पाक करके 'पाकीजा' होओ अः दिलवर,
'हम-दर्दी' रखो आपस में,' 'हम-पहलू' बनो, न हमलावर।
'तसलीम' करो 'तहजीब' यही, 'तहरीक' न अब करना उत्तम,
'तहसीन' भले की ही करना, 'ताकीद' यही करते 'हमदम'।
"सुब्हान रब्बिय-ल्-अजोम्।" मंगल हो महाप्रभु का निसदिन,
"समिअल्लाहु लिमन् हमिदः," स्तुति को सुनता है प्रभु हरदम्॥

(६१)

"सुबहात कल्लाहुम्म ! रब्बा व विहम्दिकल्लाहुम्म !-ऽगफिर्ली,"
हे महाप्रभो मंगल तेरा, स्तुति तेरे लिए तू त्राहि माम्।
करलो 'रकात' तुम वैयक्तिक, "अल्लाहु अक्बर" चार बार,
"अश्हदो अँल्ला-इलाह इलल्लाह," दोबार
साक्षी देता परमेश्वर के उसके सिवाय है पूज्य नहीं,
ईश्वर का दूत मुहम्मद है, साक्षी देता, है और नहीं॥

(६२)

"हय्य अलस्सलात्," आओ नमाज में होओ शरीक,
"हय्य अलल्-फलाह," आओ, भलाई की ओर आओ
"अल्लाहु अक्बर," "ला इलाह इल्ल-ल्लाह"
है महान् पूज्य वह परमेश्वर दूसरा न पूज्य ईश्वर कोई।
यह है, 'अजान' या आह्वान, 'तकबीर-तहीम' इसे कहते,
"कद् कामतिस्सलात्" आरम्भ हुई, इसको नमाज करना कहते॥

(६३)

करते प्रारम्भ कृपालु दयामय ईश्वर के ही नाम से
"बि-स्मिल्लाहिर्रह्मानिर्रहीम्।' प्रशंसा जगदीश्वर स्वामि के लिए
'अलहम्दु लिल्लाहि रब्बिल् आलमीन्'। 'अर्रह्मानिर्रहीम्'।
जो समस्त संसार का स्वामी न्याय-दिवस (कयामत) का स्वामी है।
उसी की हम सेवा करते हैं, और उसी से सहायता पाने के इच्छुक हैं।
सीधे मार्ग का वे आदेश करें, जिन पर कि उसने कृपा की है।

(६४)

'हो ज्ञान कदाचित तुमको,' उस मुहम्मद पर हमने अरबी
कुरान उतारा है,
मंगल संदेशप्रद भयदायक,' वह ग्रंथ अरबी-कुरान उतरा है।
परम कृपालु दयामय की यह पूर्ण-कृपा से फैला है,
उस प्रभु का लक्षण उसमें ही वर्णित है, जो चमकीला है।
जातियाँ सभी उसको जानें हृदयस्थ करें और सत् माने,
महाप्रभु ओर से तेरे लिए मुहम्मद पवित्र संदेश लाए।

(६५)

'कुल हुवल्लाहु अहद्। अल्लाहुस्समद्।
लम् यलिद् व लम् यूलद्। व लम् यकुन् कुफुकन् अहद्।'
कह, वह परमेश्वर एक और सबका है सर्वाधार वही,
वह नहीं उत्पन्न करता है न उत्पन्न हुआ कब ही।
दुनिया में कोई समान आकर के उसके ठहरा हो,
ऐसा न कभी देखा न सुना वह सर्वोत्तम है अहद् करो।

(६६)

'कह जो कुछ हम पर इब्राहीम, इस्माइल, इस्हाक, याकूब,
जाति (इस्राइल-सन्तति), मूसा, ईसा और दूसरे ऋषियों पर।
परमेश्वर की ओर से उतरा है, हम उनमें से किसी का अलग
नहीं करते,
हम सब पर और परमेश्वर पर विश्वास करते हैं,' यह कुरान सुनाते।
'यह ज्योति ईश्वरी सत्ता की मुँह से न फूँककर बुझा सके,
वह प्रभु प्रकाश को पूर्ण किए बिना नहीं रह सकता, चाहे
नास्तिक बुरा माने।'

(६७)

'हे मुसलमानो दूसरे के माल पर जिस पर हक तुम्हारा नहीं,
मत खाओ,
सिवाय इसके कि प्रसन्नतापूर्वक आपस में सौदा हो गया हो।
आपस में हत्या मती करो, भगवान तुम पर दयावान है।'
'हे मुसलमानो जब तुम नशा में हो, नमाज में मत उपस्थित हो,
जब तक जो कुछ तुम कहते हो उसे समझने न लगो।'
ऐसी आयतें मजहबी हैं, प्रिय उनको गुनो सत्य करलो॥

(६८)

'सिर्रे बिस्मिल्लाह अगर खाही की गरदद जाहिरात ।
चूँ 'सनाई' अव्वल अलकाबे हसीं बायद निहाद ॥'
ऐ मानव ईश्वर का रहस्य समझेगा तब, जब पाक दिल हो,
जैसे 'सनाई' कवि का दिल है, है हृदय पवित्र, साधना हो।
गर तेरे अन्तस् में फैला विश्वास है–प्रकाश उजाला है,
तो बाहिर की है फिक्र नहीं, सन्देह को कैसी चिन्ता है॥

(६९)

'गर गौहरे ताअतत न सुफ्तम हरगिज ।
वर गिर्दे रहत जे रुख न रफ्तम हरगिज ।
नौमीद ने अम जे बारगाहे करमत ।
जीरा के यकेरा दो न गुफ्तम हरगिज ॥'
भगवन् तेरी पूजा न कभी साधना न मुझसे बन-पाई,
है एक भरोसा तेरा ही ऊमर खय्याम की रुबाई ।

(७०)

'रोजे हुशयारी नबूदम बुत परस्त।
बुत परस्तीदम चोगश्तम मस्त मस्त ।'
अत्तार फरीदुद्दीन कहैं–जब मैं अपनी सुध-बुध में था।
तो पूजा मूर्त्ति करी नहीं, पर प्रेम में पड़, वह कर बैठा॥
'दर रहे इश्के तो हर चम बूद शुद ।
कुफ्रो इलामो जियानो सूद शुद ॥'

(७१)

प्रेमी हूँ ऐसा सब खोकर आया हूँ पाने तुझ ही को ।
अब धर्म और अब खुदा नहीं केवल का आश्रय है मुझ को॥
'किस्सए 'अत्तार' बर ईं माह नेस्त ।
सिर्रे साहब नज्द कस आगाह नेस्त ॥'
ईश्वर का भेद अरे ज्ञानी पा सका कभी भी निज मति से,
प्रेमी है वही समा समझो, परवाने उस पर जल मरते ॥

(७२)

'आईना रोजे कि बिगीरी बदस्त ।
खुद शिकन आँ रोज मशो खुद परस्त ॥'
खेशतन आरा मशो चूँ बहार ।
तानकुनद दर तो तम रोजगार ॥
जामए ऐबे तो तुनक रिश्ता अन्द ।
जाँ बतो नौ परदा फेरो हिशता अन्द ॥'

(७३)

सूफी कवि निजामी यों कहते हैं 'दूसरे के दुर्गुण,
मत देखो निजी गुणों को भी, पर को न देख निज को देखो ।
क्यों स्वार्थ परक हो गिनो बड़ा अपने को, आदत रही बुरी,
दूजे को दोषी ठहराते, तो दुनिया कहे तुम हो दोषी ।
आवरण तुम्हारे दोषों का हल्का है बहुत इसी खातिर,
नो आकाशों के नो पर्दे, डाले हैं तुम पर इस खातिर ॥'

(७४)

'प्रिहदीते पजाल्स्ता क्नम' 'या सग्लासेन,' 'नो वज्रजायु'
कृपया आइये हमसे मिलिए, मैं राजो हूँ, एतराजन यूँ ।
'वी प्रवी' 'ने सेम्नेवा' 'प्रे स्कास्न' 'दांकनेश्ना' कहना उत्तम,
सच कहते आप, संदेह नहीं, अच्छा है बहुत, निश्चित् उत्तम ।
'जावाशे ज्दरोव्ये' 'जेलायु, वम उस्पेहा बू रबोते' सच,
यह पान स्वास्थ्य को प्रस्तुत है, तुम सफल बनो, यह चाहें बस ।

(७५)

यदि अन्यायी अन्याय करे, तो लड़ो उसीसे मत झिझको,
पर सोचो, तुम न न्याय-पथ से, हो डिगे हुए, खुद की सोचो ।
मानव की शक्ति, मिटाए जो, वह साधन-बुरा, बुरा ही है,
'एटम-ब्रम्ब' बड़ा घृणास्पद है, इससे चहुँ ओर तबाही है ।
हम सब मिलकर विरोध करते, आवाज खलक की आई है,
हम फलक जीत लेंगे इससे, जो शक्ति एटमी पाई है ।

(७६)

ताकत को बुरी न कह बैठो, है योग बुरा इन शस्त्रों में,
वश में इसको करलो वैसे, चमकादे नाम अरे जग में ।
अब देखो समझ जगी उनकी, कहते हैं क्षुद्र-प्रयोग न कर—
योजित करदो मानव हित में, चमकेगा जग, मानव, हितकर ।
ऐसे भी बे-नकाब कितने, जो सच की हँसी उड़ाते हैं,
मानव होकर, मानव-विनाश का, राग अलापे जाते हैं ।

(७७)

हम अपना शास्त्र सुनाते हैं, मानव-मन कैसे तप-निखरे,
पहिले मन में प्रसाद जागे, ईर्ष्या-छोड़े, क्यों जले-भुने ।
सौम्यता शान्ति का हो प्रताप, मौनी होकर मन का रोके,
अपने को स्थिरतम यों करले, ज्यों दीपक बिना हवा होए ।
भावों में शुद्धि सदा होगी, इस तरह प्रक्रिया करने से,
भावना बनेगी विमल-स्वच्छ, भावुकता गहरे-चिन्तन से ।

(७८)

'चंचल' है बड़ा, 'प्रमाथी' है, मानव-मन है बलवान बड़ा,
काबू पाना इस पर मुश्किल, अभ्यास करो हो उठे खरा ।
इन्द्रिय-रथ में यह बैठा है, घोड़े हैं बे-लगाम इसके,
धीरे धीरे काबू में लो, मन को रोको, जब तेज-भगे ।
कुछ राग न जोड़ो तन-मन से, धन से वैराग्य करो, प्यारे,
स्व-अर्थ नहीं ये सकल-भोग, उपभोक्ता मानव-गण सारे ।

(७९)

आवश्यकता को पूर्ति महज़, आसानी से जब हो सकती,
दुष्कर्म, नाश का करने की, आवश्यकता फिर क्यों रहती ।
मद, दंभ, कपट, पाखंड, पाप, कहते 'अधर्म' हम इनको ही,
मन मानी खुल कर के करना जाना पहिचाना दोष यही ।
आपद् में फँसने पर ही तो, सब को निज-दोष, दीख जाता,
जब आर्त बनेगा कोई भी घबराएगा वह दुःख पाता ।

(८०)

हैं सत्य-निष्ठी भारतवासी, सच्चे-स्नेही के साथी हैं,
हैं विश्व-प्रेम के साधक हम, विश्वास-योग्य जित काशी हैं।
निर्भर हैं आत्मशक्ति पर ही, जनजन-स्वातन्त्र्य समर्थक हैं,
हम शोषित, पीड़ित-मानव के, निःस्वार्थ भाव से सेवक हैं।
जग सुखी बने, भय दूर हटे, श्रद्धा उन्नति में रखते हैं,
दुःख स्वयं भोगलें, उफ् न करें, अपराध क्षमा भी करते हैं।

(८१)

'भा' आभा ज्ञान, विकास, उदय, 'रत' हैं जो ज्योति-जगा उर में,
'तमसो मा' 'ज्योतिर्गमय,' 'असतोमा' 'सद्गमय' स्वर में।
'सत्यं जयते' भारत मोटो, सत् की जय विश्व-मनुज की है,
'सत्यं वद' 'धर्मं चर' का ही, है पाठ, शील-नय अपनी है।
'धारणा' सत्य की ऐसी है, जो जीव प्राणी-मात्र को हितकर है,
अत्यन्त-भूतहित हो जिससे, वह धर्म, सत्य-शिव-सुन्दर है।

(८२)

यह 'अग्नि-सोम' की ही 'महिमा,' सत् की 'गरिमा,' सत् की 'लघिमा,'
'चित्प्राप्ति' सार, 'ईशित्व' यही, 'प्राकाम्य' प्रभुत्व धरे 'अणिमा'।
सत् के वश में जग के पदार्थ, सन्मानव करता जग 'वशित्व,'
यों अष्ट-सिद्धि वश में करके, आनन्द जगाता है कवित्व।
सब रूप इसी के जड़-चेतन, सत्त्वों में सत् की सत्ता है,
'ॐकार' 'अस्ति सत्' कहता है, लोकों में सत्य-प्रतिष्ठा है।

(८३)

मैं हूँ जीवित' 'मैं कर्म करूँ,' यह स्वीकृति हुँकृति प्राणों में,
श्वासों की गति में सत्ता है जीवन है, श्रम है, प्राणों में।
प्राणों की खेती प्राणों में, प्राणी करता ही आया है,
प्राणों का नाता मन से है, प्राणों से प्राण सजाया है।
सब 'धर्म-समान,' अरे मुस्लिम-पारस-ईसाई मिल लो अब,
यों मिल करके 'सम-दृष्टि' धरो, इस 'देश-धर्म' को रखलो अब।

(८४)

'वाशिष्ठ-योग कहता देखो, 'शान्तिः श्रेयः यह 'परं-विद्धि'
उसकी प्राप्ति सतत् होए, मानों इसको ही परम-सिद्धि ।
चाँवल, जो खाने को सम्मुख, है धरा हुआ, खा पेट भरो,
'तत्सिद्धौ विकल्पितैः' से क्या, षट्राग न मनमें जरा धरो ।
चिन्ता है व्यर्थ, सामने जो प्रत्यक्ष, उसे उपयोग करो,
पोषण करलो अपना प्यारे, हो शान्ति लोकहित, सबकी हो ।'

(८५)

ये शास्त्र-सार, मानव का मत, शास्त्री की कथा सु-विस्तृत है,
ये लाल जवाहर के प्यारे, श्री शास्त्री लाल बहादुर है ।
अस्त्रों का ये विनाश चाहें, कहते जाते निज-भाषा में,
जापान, युगोस्लोवी, रूसी, अमरीकी, ब्रिटिश हैं सहमति में ।
ये सभी अफ्रीकी देशों के, कनैडा के भी, वे सब सज्जन,
कहते पुकार कर, यही सदा, शस्त्रों का अब कर दो मज्जन ।

(८६)

सोचा है हमने भी इसको, आपात-मधुर, संहार-कर्म,
परिणाम-कटुत्व भरा इसमें, है बन्धु-विनाशक यह अधर्म ।
मारण, उच्चाटन, वशीकरण, या मूँठ चलाना मन्त्र-फूँक,
फलदाता उत्तम कभी नहीं, करते जो साधन-यन्त्र गूँथ ।
ये क्षुद्र-सिद्धियाँ, क्षणिक-मात्र, आसुर-सम्पद् कहलाती हैं,
मन बिचलित जो करते इन पर, गति दुर्गति उन्हें सताती हैं ।

(८७)

'दावानल' वन में धधक उठे, 'वाडव' समुद्र जल को शोषै,
'आग्नेय,' 'इन्द्र-यम-वरूण-अस्त्र,' 'ब्रह्मास्त्र' चलै, तो क्या होए ।
दिल में जो आग भड़क उट्ठै, ईर्ष्या बनकर मस्तक छाए,
होता उससे क्या बुरा, अरे, जग-मारण को कोई धाए ।
वे वृक्ष खड़े हैं अद्यावधि, कितना जल घटा समुद्रों में,
मानव हैं जीवित धरणी पर, सत् ईश्वर, जन सत् सदियों में ।

(८८)

ऋषि पातञ्जल का योग सुनो, जो योगशास्त्र के पारंगत,
है चित्तवृत्ति अवरोध योग, 'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः' सत्।
ये चित्त अवस्था पाँचों में रहता, रमता है यहाँ वहाँ,
जब काम क्रोध तमगुण में ये जाता, निद्रा आलस्य महा।
वह मूढ़ बना, फिर रजगुण में, फैला तब क्षिप्त विक्षिप्त रहा,
एकाग्र-अवस्था में आकर स्थिर हुआ, रजतम अवरुद्ध सत्व उभरा।'

(८९)

'सबसे अन्तिम है निरुद्धावस्था, यह पुरुषपूर्ण से घुलामिला,
पाँचों क्लेशों का नाश किया, आत्मस्वरूप में यह चमका।
ये हुई 'विवेक ख्याति' यहाँ, 'पर-वैराग्य' हुआ इसको,
विषयवती वो वृत्ति जगी, जिससे मन की स्थिति, बन्धन हो।
यह चित्त वीतराग होकर, तप, स्वाध्याय, ईश्वर में जो रमा,
हिंसादिक क्लेश-भावना को छोड़ा, यह क्रिया योग इसका।'

(९०)

'अहिंसा प्रतिष्ठायां' देखा सब वैर त्याग कर दूर धरा,
'सत्य प्रतिष्ठायां' में, यह 'क्रिया फलाश्रय' योग्य बना।
'अस्तेय प्रतिष्ठायां' में तो जब लोभ मिटा, धन खुद आया,
'ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठाया' से तो बलवीर्य लाभ कर, सुख पाया।
यों 'अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष, अभिनिवेश' त्याग कर शुद्ध बना,
ये 'समाधि-भावना-अर्थ' किया, और 'क्लेशतनूकरणार्थ' किया।

(९१)

'हृदये चित्त संवित्' परम ज्ञान, करता प्रकाश इस पर छाया,
प्रज्ञा वो 'ऋतम्भरा' चेती, यम, नियम, धारणा, ध्यान हुआ।
सिद्धासन पर वह जा बैठा, और जब समाधि से प्राण चित्त,
एकाग्र हुए तो, पहिले तो जगती के शब्द सुने उसने. धीरेधीरेसबहुएलुप्त।
वह दाहिने कान से सुनता था, आवाजें भेरी, समुद्र मेंघ,
पश्चात् घंटे के बजने सी, फिर अन्तिम वीणा, वंशी-रव।

(६२)

वह 'ब्रह्मप्रणवसंलग्न' नाद, 'ज्योतिर्मय' देखा, बुद्धि जगी,
मन लीन हुआ विष्णु के पद, जो परम पद है मुक्तिमयी ।
आकाश तभी तक था, जब तक, संकल्प शब्द फैला होता,
निःशब्द औ तत्पर, ब्रह्म परमात्मा से सम्बन्ध जुड़ा ।
वह नाद, अनाहत ही गूँजा, मन सुनता था तब तक ठहरा,
नादान्त में तो सब लीन हुआ, मन-चित्त-आदि तल्लीन हुआ ।

(६३)

ये मुनि कणाद वैशेषिक के आचार्य धर्म की व्याख्या में,
कहते हैं 'यतोऽभ्युदय' होए वह धर्म, जगत्-परिभाषा में ।
निश्रेयस् 'आत्यन्तिकश्रेयः,' अन्तिम कल्याण बनाना हो,
तो धर्म सहारा दे देगा, जब आम्नाय प्रमाण स्वीकृत हो ।
सुख से ही राग पनपता है, उसमें जब तन्मय हो जाते,
देखें नहीं तो भी 'अदृष्टत्वात्', बिन देखे भी खिंचते जाते ।

(६४)

'ये धम-अधर्म प्रवृत्ति यहाँ, इच्छा और द्वेष पूर्विका है,
उनसे संयोग करो यदि तो जग में फँसने का सौदा है ।
यदि छोड़छाड़ कर दोनों को, मानव यदि दुःख न हर्ष करे,
वह वीतराग है वह यति है, सुख शान्ति उसे आनन्द भरे ।'
जैमिनि मीमांसा धर्मों की करते, कहते हैं प्रेरक यह,
इससे प्रेरित हो जो करता, है सच्चा आत्ममीमांसक वह ।

(६५)

'दुःख, जन्म, प्रवृत्ति, दोष, आदि मिथ्या और ज्ञान कहाँ सच है,
बढ़ते जाएं यदि ये क्रमशः, संसारी ही वह प्राणी है ।
दुःख भोगेगा वासना-युक्त, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान कहे,
यदि क्रमशः इनका नाश करें तो मोक्ष-साधना सफल बने ।'
यह ज्ञान महर्षी गौतम का, जो द्रव्य तत्व के द्रष्टा थे,
समवाय असमवायादि बता, वह न्याय-योग के स्रष्टा थे ।

(९६)

'सांसारिक दुःख आधिभौतिक, ये जराजन्म औ मरणादिक,
भूकम्प, बर्फ का पड़ना या आँधी आदिक सब अधिदैविक।
प्रज्ञा में जब दुःख चिन्ता का भीषणतम रूप उभर आए,
आध्यात्मिक दुःख वही भोगे, जो आ-जाए या पछताए।
दुःख एक मिटे तो एक बने, मिट जाने पर भी आशंका,'
कहते हैं कपिल महर्षी ये, यह सांख्य-योग की गुण गरिमा।

(९७)

धर्मार्थ काम औ मोक्ष चार, पुरुषार्थ नाम से व्यवहृत हैं,
मानव के हैं सब मन चाहे, पुरुषार्थ मनुज का सब कुछ है।
प्रकृति में सब ही गुण सारे, ये पाँच, आठ, पच्चीस कहें,
सम्पर्क करें तो संसारी, संपर्क छोड़दे तो बिहरें।
तीनों दुःख उपर्युक्त को जब मानव मन को एकाग्र बना,
कर्मों से नष्ट करे सोचे, है ब्रह्म सत्य औ जग मिथ्या।

(९८)

श्री राम कृष्ण वे परम हँस कहते हैं 'एक समय ऐसे,
'दो यात्री साथ सफर करते, देखा गिरगिट को पेड़ तने।
बोला उनमें से अरे एक गिरगिट यह लाल रंग का है,
दूजा बोला वह नीला है, तुमको यह भ्रम क्यों होता है।
नजदीक बसे इक मानव से जा पूछा दोनों ने तुरन्त,
वह बोला लाल और नीला गिरगिट, यह बदले सदा रंग।'

(९९)

'परमात्मा नाना रूपों में दिखता है जो जैसे भजता है उसको,
वैसे ही दर्शन वह देता, वह समझता है प्रभु वैसे को।
जितनी भी भिन्न भिन्न आकृति, भू पर तुम देखो जीवों में,
वे एक ईश के विविध रूप, वह गुणित हुआ बहुरूपों में।
वह निर्गुण, रूप रहित भी है, वह सगुण रूप बहुविध रचता,
वह बड़ा विधायक दोनों का, वह स्रष्टा गुण का और निर्गुण का।'

(१००)

'जब एक व्यक्ति सब मिल करके, हो लोगे मिलते जाओगे,
'मैं ही ब्रह्माण्ड हूँगा' जब, द्वन्द्व भाव, तब खो दोगे ।
जय का भी अन्त तभी होगा जब मानव सब एकात्म बने,
तब भेदज्ञान हो नष्ट सभी, संसार मौत क्यों कर ठहरे ।
जब तक तुम अपने को भिन्न बना, संसार सार से दूर रहो,
तब तक कोई व्यक्तित्व नहीं, व्यक्तित्व मिले ब्रह्माण्ड कहो ।'

(१०१)

इनके ही शिष्य स्वामिवर वे जो विवेकानन्द हैं कहलाते,
भारत वेदान्त प्रचारक थे, जो अमरीका लंदन जा गाते ।
'हम दो संसारों में हैं विभक्त, इक आंतरिक इक बाह्य सृष्टि,
ढूँढा बाहर को पहिले जब, फिर जा पहुँचे अभ्यन्तर प्रकृति ।
निज प्यास बुझाना, मानव ने पहिले, चाहा था बाहिर से,
पाकर संदेश प्रकृति का ही वह झुका भीतरी, भावों मे ।

(१०२)

'आनन्द कवित्व जगा लाया वह मुग्ध बना कुछ पा करके,
संसार विस्तृत खोजा उसने, निज अनुसंधानात्मक लक्षण से ।
तुम घूम रहे, ये मेज घूमती, गति सर्वत्र हो रही है,
'सृ धातु' सृष्टि, 'गम्-धातु' जगत्, अविराम गतित्व यहाँ सब है ।
यदि लो समष्टि ब्रह्माण्डतत्व, तो कभी नहीं वह घूम रहा,
परिवर्तन उसमें नहीं हुआ, वह स्थिर अपरिर्वतित रहता ।'

(१०३)

'तामिल वेद सन्ततिरुवल्लुवर, दक्षिण में अधिक प्रचारित है,
जिसमें मानव को ऋषिवर ने धर्मार्थ काम उपदेश ही है ।
'धन' वैभव, इन्द्रिय सुख सब ही, तूफानी समुद्र बड़े गहरे,
जो धर्म सिन्धु मुनिवर की शरण ले लेते वही पार करते ।
रक्खो मन को पवित्र हरदम, यह सार धर्म का इसमें है,
जो जीवन सद् गृहस्थ का है, धर्मानुकूल वह मोक्षप्रद है ।'

(१०४)

'देखो जो पुरुष निजी इच्छा को दृढ़कर इन्द्रिय पाँच विजय,
वश में कर लेता शक्तिपूर्ण, वह नरपुंगव उसकी ही जय।
जिस तरह बड़ा हाथी अंकुश से वशीभूत हो जाता है,
वास्तव में स्वर्ग-खेत बोने को बीज-योग्य वह होता है।
इन साधु-प्रकृति पुरुषों ही की महिमा ब्राह्मण सज्ञक कहना,
वे दया सभी पर रखते हैं, सबसे है बड़ी यही महिमा।'

(१०५)

ये 'भूः भुवः स्वः' तीन लोक, त्रैलोक्य समाया है जिनमें,
आत्म-ज्योतिः, सविता सब में, है चमक उसी की थल-नभ में।'
यह तेज देव का, हम देखें, हैं ध्यान लगाते इस पर ही,
प्रार्थना सदा नत हो करते, जो बुद्धि सत्यमय देता ही।
कर्म-करो, यह प्रेरणा है, सत्कर्म करो, सम्बोधन है,
आत्मा में तेज सत्यमय हो, आत्म-प्रकाश, इष्टतम है।

(१०६)

'विश्वानि देव सवितुः' कहते, 'दुरितानि परासुव', चाह यही,
'यद्भद्रं तन्न आसुव,' कल्याण, जन्म-साफल्य यही !
'तेजस्वि नावधीतमस्तु,' तेजस्वी-मानव उन्नत हों,
हों नहीं पराजित वे निश्चय, यह सरस्वती-श्रुति कहती यों।
अच्छा सारथि, रथ के घोड़ों को नियमन करता जाता है,
जो 'हृत्प्रतिष्ठ' मेरा मन है, शिव का संकल्प सजाता है।

(१०७)

पृथ्वी का क्षमाशील तन है, वह बुरे भले को निभा रही,
जो ठोकर देना सह लेती, पर जीवन उसका चला रही।
खो-देगा वृक्ष रोपने को, फल शीघ्र कर्म का पा-लेगा,
हल से जोतेगा जो किसान, भर पेट अन्न वह खा-लेगा।
वृक्षों की डालों पर देखो, ये पंछी नीड़ बना, बैठे,
गरमी से घबराए जन को, छाया में तुरत सुला लेते।

(१०८)

काटेगा, इनको ग्रारो ले, तो भो ये परिणति पर हँसतो,
निज का तन-मन सब जला जला, पर का पोषण करती रहती।
पत्तो ग्रौ घास, रत्न-पत्थर, मिट्टी भी जगत् बनाती है,
खुद के तन पर हैं सजे घाव, पर, पर का महल सजाती है।
रस शोषेगा जब ग्रग्निबाण, ज्यों रामबाण था चला यहाँ,
मरुभूमि बनी, जल सूख गया, है जोव बसेरा वहाँ कहाँ।

(१०९)

हैं ग्राज हरे ये खेत यहाँ, लहराते ग्रौ बल खाते हैं,
जो जीव जाति को ग्राश्रय दे, मानव की भूख मिटाते हैं।
गुल खिले, यहाँ गुलशन महका, बुलबुल का बोल सुहाना है,
कोयल की कूक, मोर नाचै, भ्रमरों का ग्राना जाना है।
ये ग्राज गिलहरी कुतर रही, गिरगिट भी रग बदलता है,
जुगनू की चमक ग्रँधेरे में, प्रकृति प्रिय ही देखा करता है।

(११०)

ग्राराम यहाँ, वन खण्ड यहाँ, छाता वसन्त, सुषमा भाती,
गर्मी भोषण जब ही ग्रातो, उत्तप्त-भूमि, सूखे-जाती।
वर्षा ग्राती, घनघोर जमी, जलमयी मही ये सरसाती,
नम घटती, शरत्काल ग्राया, चन्द्रिका, चन्द्र-विहरत, भाती।
हेमन्त बर्फ को ले ग्राता, ठंडक बढती, कुहरा छाता,
पतझड़ को करता ही ग्राया, यह शिशिर सभी को ठिठुराता।

(१११)

जीवों का लालन-पालन है, बस्ती है, रागरंग भी है,
सूना सा कहीं नहीं दिखता, यौवन का समा तरगित है।
ग्राती दीवाली दीप सजा, होली उल्लास-भरे ग्राती,
भाई बहिनों को स्नेह-सूत्र में, रक्षा-बन्धन बँधवाती।
ये तीज ग्रौर गणगौर यहाँ, मेले सावण में हैं, भरते,
झूले डालों पर डलते हैं, घूमर, गरबा, भाँगड़ सजते।

(११२)

कामिनी थाल में कुंकुम ले, सोलह शृंगार रचाती है,
अवगुण्ठन में कुछ दृष्टि फिरा, मुसकाती, प्रिय हरषाती है।
प्रियतम का हृदय सरस होता, पत्नी की साध, गोद भरती,
दादा, ताऊ औ नाना का, हिय हुलसा, बड़ी खुशी होती।
नन्हें-मुन्ने घर-आँगन को किलकारी से मुखरित करते,
घर भर हँसता, दिख जाता है, मिलजुल कर कुटुम्ब में रहते।

(११३)

यह दृश्य देखने संस्कृति का, पर्यटक दूर से आते हैं,
अपनी से भिन्न सभ्यता की, झलकियाँ देख हरषाते हैं।
पूरब-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण से चलकर, जो भी आते हैं,
वे अतिथि मान्य सब ही हमको, स्वागत को सम्मुख जाते हैं।
देखें जी भरकर विविध-दृश्य, या वास्तुकला मन्दिर मसजिद्,
नव-योजन के, वे रूप मुख्य, या मानव कैसे, शान्ति-प्रिय ॥

(११४)

जब खुशी जगत् में फैली हो, यात्रा करना अच्छा लगता,
पाप न हो दिल में जिसके, यात्री वह सदा-सुखी-रहता।
भेदक है उसकी बुद्धि यदा, तत्काल विदेशी छुप न सका,
जो बुरा करे सो भोगेगा, विधि का विधान यह रुक न सका।
जब नहीं रहेगा बाग, बाग यात्रा, काहे को जाएंगे,
घर में, निज-परिधि-मध्य घूमें, पिंजरे के सिंह कहाएंगे।

(११५)

आदमी आज भी ऐसा है, जिसके घर पर कुछ अस्त्र नहीं,
वह छुरी कटारी कब लेगा, जब तन ढकने को वस्त्र नहीं।
है अन्न नहीं घर में जिसके, दो जून न रोटी बन पाती,
बुड्ढे बच्चे सब ही भूखे, चिल्लाना-सुन फटती छाती।
अस्त्रों को अरे महार्घों को, कैसे खरीद लेगा गरीब,
मानव अधिकांश अभी ऐसे, देखो आकर के अन्-करीब।

(११६)

क्या भेदक है उस मानव में, जो हिंसक अस्त्र बनाता है,
जो नहीं बनाता, वह उत्तम, निर्माता होड़ में आता है।
जो अभी हुआ पैदा बच्चा, क्या तीस-वर्ष के मानव से,
भिड़ बैठे, क्या तुलना होगी, ओछी पूँजी के सम्बल से।
जो दृढ-प्रतिज्ञ हैं समझ चुके, यह दौड़ अभी से चली नहीं,
युग दो से बुरी भावना ये, पनपी रक्षित है, धरी-भरी ॥

(११७)

ये सूर गोपिकाएं बोली, 'ऊधो, मन मानें की बात यही,
विष कीरा दाख छुँहार छोड़ विष को खाता है बात सही।'
तुलसी भी कहते हैं यों ही, 'मन पछितै हैं अवसर बीते,'
'सहस बाहु दस बदन आदि नृप, बचे न काल बली ते'।
'साँची प्रीति विषय माया सूँ, हरि भगतन सूँ हाँसी,
कहै 'कबीर' प्रेम नहि उपज्यो, बाँध्यो जमपुर जासो' ॥

(११८)

'सुख-दुःख-पाप-पुन्य मायामय, ईति भीति आकूत, सबकी आस
सबकी आस त्रास तजि 'व्यासहि' भावत भगत सपूत'।
'आदि-अन्त-मधि लखै न कोई 'दादू' देखे अचरज होई,
'कह 'रैदास' जासों और करन है, परम तत्त्व अब सोई'।
'सहै कुसब्द बाद हू त्यागै, छाँडै गरब गुमाना,
यह रीझ मेरे निरंकार की, कहत 'मलूक' दिवाना ॥

(११९)

'जो प्रभु कीन्हों सो भल मान्यों, यहै सुमति साधुन ते पाई
सब मँह रमि रह्या प्रभु एकै, पेखि-पेखि 'नानक' बिगसाई'
काम क्रोध मद लोभ मोह कूँ, बहा चित सों दीजै,
मीराँ, के प्रभु गिरधर नागर, ताहि के रँग में भीजै।
'जाति बरत कुल सोई नीकी, जाके होइ भक्ति-परकास,
गुरु शुकदेव कहत हैं ताको, हरिजन सेव 'चरन हीं दास।

(१२०)

'अपने अपने मद के माँते, लखै न फूटी साजी,
'सुन्दर' तिनाहि कहा अब कहिए, जिनके भई दुराजो ।'
'वण लोभी ने कपट रहित छे, काम क्रोधनिवार्या रे,
भणै 'नरसैंयो' तेनु दरसन करता कुल एकोतेर तारयारे ।
'संतांचा संग ताचि स्वर्गवास, नर्क तो उदास अनर्गल' जैसे,
'तुका' म्हणे उघडें आहे हित घात, जयाचें उचित करा तैसे ।।

(१२१)

है विद्या-ज्ञान, निरोह सदा, यह कर्म अविद्या परक रहा,
क्रम से पुरुषार्थ योग करलो, वह कर्म करो, जो उच्च सदा ।
सत्कर्म अविद्या युक्त नहीं, है आत्म-मान की स्थिति इसमें
जो मृत्यु कर्म में है, टलती, विद्या में अमृत रहा निजमें ।
पीओ अमृत को छककरके, फिर भागोगे देवत्व यहाँ,
ये अमृत-भोग का ज्ञान महा, फैला जगतो में यहाँ वहाँ ।

(१२२)

वह 'ब्रह्म' व्याप्त है पूर्ण सदा, यह कार्य-ब्रह्म भी पूर्ण रहा,
क्यों, पूर्ण, पूर्ण से बनता है, है पूरित आत्मन् विश्व महा ।
जब प्रलय काल में, कार्यब्रह्म, का वह अस्तिव सिमट करके,
होता है लीन पूर्ण-सत् में, तब बचता पूर्ण सभी मिल के ।
हो शान्ति, शान्ति औ त्रिविध-शान्ति, भू-मंडल में, सचराचर में,
सब भौतिक, दैविक, आध्यात्मिक, हो ताप-शान्ति जन-जीवन में ।

(१२३)

युग युग की यही कहानी है, योगी जन 'नाद' परख लेते,
वे 'अनहद' नाद जगा उर में, लय में, निज को खोकर, रमते ।
है आज यहाँ सत्सङ्ग-बड़ा, नाना देशों के योगी-गण,
आके एकत्रित हो, गाते, प्यारा है सब को, जन-मन-गण ।
ये शान्ति-भिक्षु सब देशों से, आए हैं उनका स्वागत है,
आग्रह है, सभी एक हो लें, श्रद्धा का यही समादर है ।।

(१२४)

सत्सङ्गों में सब का ही स्वर, आपस में मिलता जायेगा,
वह अनहद नाद जगा उरमें, परता को तुरत मिटाएगा ।
हों वर्ण विलक्षण या स्वर भी, उच्चारण, भाषा विविध रहे,
पर अर्थ व्यञ्जना एक रही, चाहे मानव, वो, कहीं रहे ।
फिर यह स्वदेश, या वह विदेश, का भेद न मन में उठने दो,
तुम हम सब एक-रूप होलो, हम सबको हममें रमने दो ॥

ॐ शान्तिः ० शान्तिः ० शान्तिः ।

॥ शुभम् ॥